इकाई -1
सृजनात्मक लेखन का सामान्य परिचय

अनुक्रम -

1.1 उद्देश्य

1.2 प्रस्तावना

1.3 विषय विवेचन

1.3.1 सृजनात्मक लेखन : अर्थ, स्वरुप और महत्त्व

1.3.2 रचना-प्रक्रिया

1.3.3 रचना का उद्देश्य

1.3.4 विषयवस्तु का निर्धारण

1.4 स्वयं अध्ययन के प्रश्न

1.5 पारिभाषिक शब्द, शब्दार्थ

1.6 स्वयं अध्ययन के प्रश्नों के उत्तर

1.7 सारांश

1.8 स्वाध्याय

1.9 क्षेत्रीय कार्य

1.10 अतिरिक्त अध्ययन

1.1 उद्देश्य:

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप-

1. सृजनात्मकता का अर्थ एवं स्वरुप समझने के साथ उसके विविध रूपों को जान सकेंगे।
2. सृजनात्मक लेखन के महत्त्व को जान सकेंगे।
3. रचना-प्रक्रिया के तात्पर्य के साथ उसके संबंधित विभिन्न सिद्धांतों का आशय जान सकेंगे।
4. रचना के पृष्ठभूमिगत कारणों के साथ रचना के उद्देश्य को समझ सकेंगे।
5. रचना के विषयवस्तु के निर्धारण का तात्पर्य समझ सकेंगे।
6. विषयवस्तु के निर्धारण से संबंधित समस्याओं को जान पाएंगे।
7. रचना में विषयवस्तु की पूर्वकल्पना किस रूप में मौजूद रहती है, इसकी जानकारी ले सकेंगे।

1.2 प्रस्तावना :

इस इकाई में हम 'सृजनात्मक लेखन' के सामान्य नियम के बारें में जानकारी प्राप्त करेंगे। सृजनात्मकता कोई ऐसी अवधारणा नहीं हैं कि जिसकी कोई सुनिश्चित परिभाषा दी जा सकती हो। न ही लेखन के बने-बनाए नियम होते हैं, जिन्हें समझकर लागू करने से सफल लेखक बना जा सकता है। यह आवश्य है कि विभिन्न रचनाकारों के लेखन और उनके अनुभव के आधार पर लेखक बनने के लिए किस तरह की मानसिक तैयारी की ज़रूरत होती है तथा लेखन से सम्बन्धित शिल्पगत ज्ञान क्या है? और उसका महत्त्व क्या है? इसके बारें में जानकारी हमें मिल सकती है। इस इकाई में हम सृजनात्मकता क्या है, सृजनात्मकता के विविध रूप, सृजनात्मक लेखन का महत्त्व, रचना-प्रक्रिया से तात्पर्य, रचना-प्रक्रिया के विभिन्न सिद्धांत, रचना का कारण, रचना का उद्देश्य, विषयवस्तु के निर्धारण का तात्पर्य, विषयवस्तु का अर्थ, विषयवस्तु का निर्धारण: विभिन्न समस्याएँ, विषयवस्तु का प्रतिपाद्य और विषयवस्तु की पूर्वकल्पना आदि के बारें में विस्तार से चर्चा करेंगे।

1.3 विषय विवेचन :

अब हम क्रमश: सृजनात्मकता का अर्थ, स्वरूप, सृजनात्मकता महत्त्व, रचना-प्रक्रिया, रचना-प्रक्रिया के विभिन्न सिद्धांत, रचना का उद्देश्य : स्वरुप की प्राप्ति, विषयवस्तु का निर्धारण आदि का विवेचन करेंगे।

1.3.1 सृजनात्मक लेखन अर्थ, स्वरूप एवं महत्त्व

1.3.1.1 सृजनात्मकता का अर्थ

सामान्य शब्दों में 'कुछ नया अलग अनोखा करने की क्षमता' सृजनात्मकता कहलाती है पर जो नया व अनोखा है वह सृजनात्मक तभी कहलाएगा जब इसमें उपयोगिता का गुण हो। सृजनात्मकता शब्द अंग्रेजी Creativity का हिंदी रूपांतरण है। सृजनात्मकता का अर्थ है- 'उत्पन्न या रचना संबंधी योग्यता'। नवीन क्रियाओं एवं विचारों को उत्पन्न करने की शक्ति या नवीन खोज करने की शक्ति अर्थात किसी के पीछे-पीछे न चलकर अपनी एक नई राह बनाने की सोच को ही हम सृजनात्मकता कहते हैं। जैसा कि सृजनात्मकता का अर्थ होता है- 'नवीन ज्ञान की खोज करना या किसी भी क्षेत्र में जब कोई व्यक्ति नवीन खोज करता है या नये विचारों का निर्माण करता है तो हम उस व्यक्ति के व्यक्तित्त्व को Creative मानते हैं एवं ऐसे लोगों की हर जगह अपने स्तर में प्रशंसा होती ऐसे व्यक्ति सदैव सैद्धांतिक विचारों वाले न होकर व्यवहारवादी विचारों वाले होते हैं। Creativity शब्द में कई बुद्धिजीवियों ने अपने विचारों को प्रकट किया है। जैसे- ''सृजनात्मकता वह योग्यता है जो व्यक्ति को किसी समस्या का समाधान खोजने के लिए नवीन ढंग से सोचने व विचार करने के लिए समर्थ बनाती है।'' अर्थात् प्रचलित ढंग से चिंतन करने, विचार करने तथा कार्य करने की अमूर्त योग्यता को ही सृजनात्मकता कहते है।

1.3.1.2 सृजनात्मकता की परिभाषा

सृजनात्मकता को विद्वानों ने अपने-अपने ढंग से परिभाषित किया है। जैसे-

1. मुक्त ज्ञानकोश विकीपीडिया के अनुसार- ''सृजनात्मकता अथवा रचनात्मकता किसी वस्तु, विचार, कला, साहित्य से संबंध किसी समस्या का समाधान निकालने आदि के क्षेत्र में कुछ नया रचने, आविष्कृत करने या पुनर्सृजित करने की प्रक्रिया है। यह एक मानसिक संक्रिया है जो भौतिक परिवर्तनों को जन्म देती है। सृजनात्मकता के संदर्भ में वैयक्तिक क्षमता और प्रशिक्षण का आनुपातिक संबंध है। काव्यशास्त्र में सृजनात्मकता प्रतिभा, व्युत्पत्ति और अभ्यास के सहसम्बधों की परिणति के रूप में व्यवहृत किया जाता है।''

2. डेवहल के शब्दों में - ''सृजनात्मकता वह मानवीय योग्यता है जिसके द्वारा वह किसी नवीन रचना या विचारों को प्रस्तुत करता है।''

3. प्रो. रुश के अनुसार, ''सृजनात्मकता मौलिकता है जो वास्तव में किसी भी प्रकार की क्रिया में घटित हो सकती है।''

4. क्रो एण्ड क्रो के अनुसार- ''सृजनात्मकता मौलिक परिणामों को अभिव्यक्त करने की मानसिक प्रक्रिया है।''

5. जेम्स ड्रेवर के अनुसार- ''सृजनात्मकता मुख्यत: नवीन रचना या उत्पादन में है।''

हम अपने आस-पास नजर डालें तो पाएंगे कि प्रकृति में हर जगह, हर वस्तु में जो जीवित है, कुछ-न-कुछ नया हो रहा दिखाई देता है। उदा. आम की मंजिरियाँ पहले छोटे तिकोलों में, फिर पूरे हरे फल में, फिर हरा फल पीले पके फल में, और फिर उस फल की गुठीली से कत्थई पत्तों वाला नन्हा पौधा- यह क्रम चलता रहता है, यही प्रकृति की सृजनात्मकता है। प्रकृति की तरह मनुष्य ने भी यह गुण अपनाया हुआ दिखाई देता है। वह भी आरम्भ से प्रकृति के साथ और समानांतर सृजन करता आ रहा है। मनुष्य पहले फल इकटठा करता था और जानवरों का शिकार करता था। आगे उसने खेती करना सुरु किया। मनुष्य जीवन में खेती करना बहुत बड़ा सृजन है। माँ द्वारा रोटी पकाना एक प्रकार का सृजन है। जैसे- रोटी को गोल-गोल बनाना और तवे पर फूलना- यही तो सृजन है। गेहूं की बुवाई से लेकर रोटी बनने तक- सृजनात्मकता की सबसे बड़ी गाथा है। सृजनात्मकता सभी कलाओं की प्राथमिक प्रेरणा है।

1.3.1.3 सृजनात्मकता के गुण

1. इसमें नवीन तत्त्वों का समावेश होता है।
2. यह एक योग्यता है।
3. इसके द्वारा व्यक्तियों में प्रतिभा का विकास होता है।
4. जिस कार्य में यह पायी जाती है वह समाज के लिए हितकारी होता है।
5. यह किसी भी कार्य को नई दिशा प्रदान करती है।

6. यह पॉजिटिव एवं नेगेटिव दोनों प्रकार की होती हैं।

7. जो व्यक्ति किसी के मन एवं किसी के व्यक्तित्त्व को समझ पाने में सक्षम होता है वह व्यक्ति Creative होता हैं।

8. जिसके व्यक्तित्त्व में लचीलापन होता है अर्थात् जो देश काल परिस्थितियों के अनुसार अपने व्यक्तित्व को ढाल सके ऐसे व्यक्ति Creative होते हैं।

9. ऐसे व्यक्तियों की बौद्धिक एवं काल्पनिक स्तर उच्च होता है।

10. वह वास्तविक एवं व्यावहारिक होते हैं।

11. उनमें सौंदर्यात्मक कौशल का स्तर उच्च होता है आदि।

1.3.1.4 सृजनात्मकता के तत्त्व

मनोवैज्ञानिक टॉरेंस ने सृजनात्मकता के चार तत्त्व माने हैं- प्रवाह, नमनीयता, मौलिकता और विस्तारता। इस बीच मनोवैज्ञानिकों ने सृजनात्मकता के कुछ अन्य तत्त्वों की खोज भी की है। जैसे- संवेदनशीलता, नवीनता, मौलिकता, प्रवाह, नमनीयता, उत्सुकता, विस्तारता, स्वतंत्र निर्णय पुनर्परिभाषीकरण, सृजनात्मक उत्पादन आदि।

1.3.1.5 सृजनात्मकता की प्रकृति एवं विशेषताएँ

सृजनात्मकता के स्वरुप एवं उसके सर्वमान्य गुण अथवा तत्त्वों को ही उसकी प्रकृति अथवा विशेषताएँ कहते हैं. उन्हें निम्नलिखित रूप में क्रमबद्ध कर सकते हैं-

1. सृजनात्मकता मनुष्य की वह योग्यता अथवा शक्ति है जिसके द्वारा वह नए-नए विचार प्रस्तुत करता है, नई-नई वस्तुओं का निर्माण करता है और नए-नए तथ्यों की खोज करता है।

2. सृजनात्मकता मनुष्य की वह योग्यता अथवा क्षमता है जिसके द्वारा वह किसी समस्या के मौलिक हल खोजता है।

3. सृजनात्मकता की एक विशेषता यह भी है कि इसके द्वारा जो भी नए विचार प्रस्तुत होते हैं अथवा जो भी नई वस्तुएँ निर्मित होती है अथवा जिन नए तथ्यों की खोज होती है, वे मानव जीवन के लिए उपयोगी होते हैं।

4. सृजनात्मकता जन्मजात होती है और इसकी अभिव्यक्ति एवं विकास अनुकूल पर्यावरण में होता है।

5. भिन्न-भिन्न व्यक्तियों में सृजनात्मकता की योग्यता भिन्न-भिन्न होती है।

6. भिन्न-भिन्न व्यक्तियों में भिन्न-भिन्न प्रकार की सृजनात्मकता होती है, किसी में साहित्यिक, किसी में कलात्मक, किसी में कौशलात्मक, किसी में वैज्ञानिक, किसी में तकनीकी और किसी में किसी अन्य प्रकार की।

7. सृजनशील व्यक्ति किसी भी विषय पर अधिक विचार व्यक्त करते है।

1.3.1.6 सृजनात्मकता के विविध रूप

हम देखते है कि मिट्‌टी का एक गोला घूमते चाक पर कारीगर की हथेलियों के बीच सँवरते-सँवरते सुघड़ सुराही में बदल जाता है। यह देखकर हमें आश्चर्य होता है कि मनुष्य का हाथ कैसे मिट्‌टी को सुडौल आकार देता है और मूर्ति बनती है। हम देखते है कि शुरू में कुछ भी नहीं होता। बस पुआल, बाँस की खपच्चियाँ और मिटटी। देखते-देखते मनुष्य की देह जितनी बड़ी आकृति बन जाती है। कई बार एक ही रचनाकार अपने आप को कई कलारूपों में अभिव्यक्ति करता है। रवीन्द्रनाथ टैगोर, महादेवी वर्मा, शमशेर आदि ऐसे रचनाकार हैं।

इस तरह हम देखते हैं एक तरफ प्रकृति अपनी रचना करती है तो दूसरी तरफ मनुष्य अपनी आवश्यकताओं के लिए रचना करता हैं, और तीसरी तरफ मनुष्य अपनी जाति में संवेदनशीलता के लिए मूर्ति बनाता है, चित्र बनाता है, नाटक लिखता है, उसका मंचन करता है, कविता-कहानी लिखता है, आदि इन्हें ललित कला कहा जाता है।

1.3.1.6.1 रोजमर्रा के जीवन में सृजनात्मकता

जब हम सृजनात्मकता के बारे में सोचते है तो साधारणता हमारे दिमाग में कुछ खास व्यक्तियों की उपलब्धियों की बात कौंधती है जैसे- साहित्यकार, चित्रकार, फिल्मकार आदि। नि: संदेह अपने क्षेत्र में ये सृजनशील है ही पर सृजनशीलता का पटल इन खास व्यक्तियों की कृतियों से कहीं अधिक विस्तृत है।

सृजनात्मकता को हम जनसाधारण की रोजमर्रा की जिन्दगी की गतिविधियों में देख और अनुभव कर सकते है। जैसे कि, प्राथमिक पाठशाला का शिक्षक बच्चों को इतिहास बेहतरीन कहानियों के माध्यम से यूँ पढ़ाता है कि बच्चों में कल्पनाशीलता और विषय के प्रति रूचि जग उठती है। इसका मतलब है कि सृजनशीलता हम क्या करते हैं, इसमें नहीं है बल्कि खासतौर पर हम उसे किस प्रकार करते है इसमें है। इसी अर्थ में सृजनात्मकता उपयोगिता से परे है। सच्चा मनुष्य हर क्षण, हर कदम पर एक अज्ञात पेड़ लगाता चलता है, सब के जीवन में नया रास-रंग भरता चलता है यही उसकी सृजनात्मकता का आग्रह है। जीवन के पेंच सुलझाना, अपने घर और समाज की सुख-सुविधा और मानसिक सुख-शांति में इज़ाफा करने वाला हर काम सृजनात्मक है। कोई उदास बैठा हो तो उसे हँसा देना, दृष्टिहीन को सड़क पार कर देना, बहुत बोझ लेकर चलने वाले का बोझ उठाना भी सृजनात्मकता ही है।

1.3.1.6.2 भाषा में सृजनात्मकता

मनुष्य ने सबसे पहले भाषा बनायी। भाषा में गीत बनाये। हमारे लोकगीत ऐसे ही बने है। सिर्फ बोलकर, गाकर ये गीत शताब्दियों से चले आ रहे हैं। बाद में मनुष्य ने भाषा को लिपिबद्ध किया। याने लिखना सीखा। तब उसने गीतों को लिखना सुरु किया। आज मनुष्य अलग-अलग भाषाओँ में बोलता दिखाई देता हैं। आज बहुत से लोग लिखते भी है लेकिन हर आदमी नाटक, कविता, कहानी नहीं लिखता। कविता, कहानी, नाटक लिखना रोजमर्रा के लेखन से भिन्न है। यही नहीं आत्मकथा, जीवनी, संस्मरण या डायरी लिखना अन्य लेखन से भिन्न है। इसके लिए भाषा जानना ही काफ़ी नहीं इसके लिए भाषा को निपुणता से जानना, उसका व्यवहार करना और भाषा में कुछ नयापन करना ज़रूरी है। सृजनात्मकता का अर्थ ही है कि कुछ नया करना और नए तरीके से करना। यहाँ नयी बात को सबसे अच्छे शब्द में, सबसे अच्छे क्रम में रखा जाता है। उदा. महाप्राण निराला की 'भिक्षुक' कविता को देख सकते है-

''वह आता
दो टूक कलेजे के करता, पछताता
पथ पर आता।

पेट पीठ दोनों मिलकर हैं एक,
चल रहा लकुटिया टेक,
मुट्ठी भर दाने को भूख मिटाने को
मुँह फटी पुरानी झोली का फैलाता
वह आता
दो टूक कलेजे के करता, पछताता
पथ पर आता।
साथ दो बच्चे भी हैं सदा हाथ फैलाए,
बाएँ से वे मलते हुए पेट को चलते,
और दाहिना दया दृष्टि-पाने की ओर बढ़ाए
भूख से सूख ओठ जब जाते
दाता-भाग्य विधाता से क्या पाते?

घूँट आँसुओं के पीकर रह जाते।
चाट रहे जूठी पत्तल वे भी सड़क पर खड़े हुए,
और झपट लेने को उनसे कुत्ते भी हैं अड़े हुए।
ठहरो, अहो मेरे हृदय में है अमृत, मै सींच दूंगा।
अभिमन्यु-जैसे हो सकोगे तुम,
तुम्हारे दुःख मैं अपने हृदय में खींच लूँगा।''

देखिए हम सब ने कभी-न-कभी, किसी-न-किसी भिखारी को देखा ही है, लेकिन निराला जी ने उसका चित्रण बिल्कुल अलग ढंग से किया है। शब्द रोज के ही है लेकिन प्रस्तुति विशेष ढंग की है। यह सारा कुछ जो निराला ने किया, वही तो भाषा की सृजनात्मकता है।

'ईदगाह' कहानी में प्रेमचंद जी ने कितनी सरलता से अपनी बात रखी है देखो, ''मिठाइयों के बाद कुछ दुकानें लोहे की चीजों की हैं। कुछ गिलट और कुछ नकली गहनों की। लड़कों के लिए यहाँ कोई आकर्षण न था। वह सब आगे बढ़ जाते हैं। हामिद लोहे की दुकान पर रुक जाता है. कई चिमटे रखे हुए थ। उसे ख्याल आया, दादी के पास चिमटा नहीं है। तवे से रोटियाँ उतारती है तो हाथ जल जाता है; अगर वह चिमटा ले जाकर दादी को दे दे, तो वह कितनी प्रसन्न होगी? फिर उसकी उंगलियाँ कभी नहीं जलेंगी।'' यही सृजनात्मकता है। प्रेमचंद जी ने कितने सीधे-सादे शब्दों में जो कहना था कह दिया है, इसमें कोई बनावट नहीं। यही सृजनात्मकता है। भाषा का व्यवहार अलग-अलग विधाओं, जगहों और जरूरतों के अनुसार बदलता रहता है।

1.3.1.7 सृजनात्मक लेखन के क्षेत्र

हमने देखा है कि सृजनात्मकता की अभिव्यक्ति कई रूपों में हो सकती है। भाषा में वह सृजनात्मकता कई रूपों में मौजूद है। मोटे तौर पर इसके तीन क्षेत्र हैं- 1. साहित्य 2. मीडिया और 3. अनुवाद।

1.3.1.8 सृजनात्मक लेखन का महत्त्व

लेखन कलाकार की आत्माभिव्यक्ति का माध्यम है। कलाकार रचना के माध्यम से अपने को अभिव्यक्त करता है। इसीलिए रचना पर कलाकार के व्यक्तित्त्व की गहरी छाप होती है। इसीलिए श्रेष्ठ रचना हमेंशा दूसरे से अलग होती है। हम देख सकते है कि एक ही दौर के दो महान कहानीकार प्रेमचंद और जयशंकर प्रसाद की कहानियों की शैली में भिन्नता है। प्रेमचंद जी ने 'पूस की रात', 'ठाकुर का कुआँ', और 'कफ़न' कहानियों में सामाजिक यथार्थ की बात की है वही प्रसाद की 'पुरस्कार', 'आकाशदीप' जैसी कहानियों में समाज के अंतर्विरोधों की बजाय अतर्द्वंद्व का चित्रण मिलता हैं। इसीको हम सृजनात्मकता कहते है। दोनों एक ही समय और एक ही वातावरण की है। लेकिन दोनों की अनुभूति और आत्माभिव्यक्ति करने की शैली अलग रही है।

इसका मतलब यह नहीं की रचना मात्र आत्माभिव्यक्ति होती है। जब तक आप अपनी शैली सृजित नहीं करेंगे तब तक एक साहित्यकार के रूप में आपका महत्त्व सीमित रहेगा। यह तत्काल उपलब्ध होने वाली चीज नहीं है।

रचनाकार के पास समाज और व्यक्ति के अंत:संबंधों कि एक परिकल्पना होती है। एक रचनाकार के रूप में वह समाज की गतिविधियों का दृष्टा ही नहीं होता, उसका भोक्ता भी होता है। दृष्टा और भोक्ता के रूप में वह अपने अनुभवों को सामान्य लोगों की तुलना में ज्यादा गहराई और तीव्रता से महसूस करता है। अपने अनुभवों को वह नये रूप में अभिव्यक्ति करने की क्षमता रखता है। रचना के रूप में जब वह अपने

अनुभव को व्यक्त करता है तो उसका प्रभाव भी पाठकों पर भी उतना ही गहरा और तीव्र होता है। इसलिए वह रचना एक सामाजिक उत्पादन के रूप में समाज पर एक खास प्रभाव छोड़ती है। वह अपने पाठकों की चेतना को बदलने और सक्रिय करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है। हाँलाकि कुछेक रचनाएँ अपने समाज पर प्रतिकूल प्रभाव भी पैदा करती हैं। जैसे की हिंदी साहित्य का रीतिकालीन साहित्य अभिजात्य वर्ग के लिए लिखा गया है। उसका समाज पर कोई सकारात्मक प्रभाव नहीं रहा।

सृजनात्मक लेखन का महत्त्व तभी है जब वह किसी–न–किसी रूप में समाज में सकारात्मक परिवर्तन का साधन बने। ऐसा वह प्रत्यक्षत: नहीं करता। बल्कि लेखन का ढंग इतना अप्रत्यक्ष होता है कि उसका प्रभाव केवल महसूस किया जा सकता है बहुत सीधे ढंग से उपदेश देने वाला या प्रचार करने वाला साहित्य भी उच्चकोटि का नहीं होता क्योंकि वहाँ भी आदर्श और मूल्य जीवन पर आरोपित होते हैं, जीवन से निस्सृत होते नहीं दिखाई देते। प्रेमचंद, निराला आदि रचनाकारों का महत्त्व यही है कि वे अपनी बात जीवन के साथ इस तरह घुला–मिलाकर पेश करते हैं कि हमें बिल्कुल ही अनुभव नहीं होता की हम जीवन से भिन्न कुछ ग्रहण कर रहे हैं। जीवन के साथ सृजनात्मक लेखन का तादात्मयीकरण ही उसके महत्त्व को बढाता है। जो लेखन हमारे जीवन से जितनी दूर होगा उसका महत्त्व उतना ही कम होगा और जिस लेखन में हमारे जीवन की जितनी तेज धडकन सुनाई देगी उसका महत्त्व उतना ही अधिक होगा। यहाँ जीवन का मतलब हमारे व्यक्तिगत जीवन से नहीं बल्कि उस जीवन से है, जो समाज के बहुसंख्यक लोग जीते हैं।

संक्षेप में हम कह सकते है कि सृजनात्मकता किसी वस्तु, विचार, कला, साहित्य से सम्बन्ध किसी समस्या का समाधान निकालने आदि के क्षेत्र में कुछ नया रचने, आविष्कृत करने या पुनर्सृजित करने की प्रक्रिया है। यह एक मानसिक संक्रिया है जो भौतिक परिवर्तनों को जन्म देती है। सृजनात्मकता के संदर्भ में वैयक्तिक क्षमता और प्रशिक्षण का आनुपातिक सम्बन्ध है। सृजनात्मकता लेखन से अलग कोई तत्त्व नहीं है न ही कोई दैवीय वरदान नहीं है। लेखन के प्रति आपकी गंभीरता, शिल्प पक्ष का ज्ञान, निरंतर अभ्यास और नया कुछ रचने की गहरी ललक ही सृजनात्मकता है, जो रचना के रूप में अभिव्यक्त करती है। निश्चित ही लेखन पर बाहरी दबावों का प्रभाव पडता है। लेकिन ये प्रभाव सकारात्मक और नकारात्मक दोनों तरह के होते है। मुख्य बात यही है कि रचना के लिए रचनाकार ने कितना तैयार किया है।

1.3.2 रचना–प्रक्रिया

सृजनात्मकता की तरह रचना प्रक्रिया की व्याख्या करना सरल नहीं है। चिंतकों व साहित्यकारों ने रचना–प्रक्रिया को भिन्न–भिन्न ढंग से व्याख्यायित किया है। रचना–प्रक्रिया की जाँच आप विभिन्न साहित्यिक कृतियों के आधार पर कर सकते है। रचना–प्रक्रिया एक लिखित पाठ बनाने की संपूर्ण क्रिया को संदर्भित करती है। जिसमें तीन चरण शामिल होते हैं– योजना बनाना, तैयार करना और संशोधित करना। जहाँ लेखक विचारों को उत्पन्न करने, अभ्यास करने और शब्द–खोज जैसी विशिष्ट गतिविधियों को पुनरावर्ती रूप से लागू करते हैं।

1.3.2.1 रचना-प्रक्रिया से तात्पर्य

रचना प्रक्रिया से तात्पर्य किसी कृति का रचनाकार अपनी रचना के लिए विशेष प्रक्रिया से अवश्य गुजरता है। रचना-प्रक्रिया हर रचनाकार की अलग-अलग होती है। यह इस बात पर निर्भर करता है कि रचनाकार जो लिखना चाहता है, उसके लिए किस काल या विधा का चुनाव करता है। मान लीजिए कि कोई लेखक कोई उपन्यास या नाटक लिख रहा है तो हो सकता है कि उसका विषय उसे अपनी सोच प्रक्रिया में सूझा हो, मगर अनेक स्त्रोतों से सामग्री जुटाता हुआ अपने समय के किसी बड़े सवाल से जोड़ता हुआ वह उसे अपने समय-समाज की विराट कथा में बदल देता है। रचनाकार की रचना-प्रक्रिया को इसी संदर्भ में समझे जाने की आवश्यकता होती है। वैसे रचनाकार की रचना-प्रक्रिया बहुत जटिल होती है, क्योंकि हर लेखक का व्यक्तित्त्व, परिवेश, प्रतिभा, कलात्मक क्षमता, वर्ग-चरित्र इत्यादि अलग-अलग होते हैं। इसीलिए हर लेखक की रचना दूसरे लेखक की रचना से अलग की जा सकती है इतना ही नहीं एक ही लेखक की दूसरी कृतियों की रचना-प्रक्रिया भी भिन्न हो जाती है।

वैसे तो हर युग की रचनाओं में कुछ सामान्य विशेषताएँ होती हैं क्योंकि वे युगीन परिवेश और साहित्यिक आंदोलनों से परिचालित होती है। लेकिन हरेक की अलग पहचान होती है। जैसे-भक्तिकाल के कवि संत कबीर, जायसी, सूरदास और तुलसीदास यह एक ही युग के कवि हैं। फिर भी उनमें कुछ सामान्य विशेषताओं के बावजूद रचना के स्तर पर उनकी पहचान अलग हो जाती है। छायावादी काल के कवि जयशंकर प्रसाद, सुमित्रानंदन पंत, निराला और महादेवी वर्मा स्वच्छंदतावादी विशेषताएँ लिये हैं। फिर भी उनकी अपनी निजी विशेषता हैं और वे उनके द्वारा स्वयं अर्जित भी हैं और प्रकृति प्रदत्त भी। बाहर से प्राप्त ज्ञानात्मक संवेदना रचनाकार के अंत:करण के आयतन ने अलग-अलग रूप लेती है। फिर रचनाकार अपनी निजी विशेषताओं के साथ उन्हें एक खास अंदाज में अभिव्यक्त करता है। यह खास अंदाज ही उसकी आत्माभिव्यक्ति है।

प्रसिद्ध साहित्यकार संजीव अपनी रचना-प्रक्रिया को तीन चरणों में रखते हैं। पहले चरण में चीजें साफ-साफ समझ नहीं आती थीं, जिसने जैसा बताया वही मानकर चलता रहा। यानी परंपरा और विरासत में जो मंत्र, तंत्र और अंधविश्वास भरी भक्ति संजीव को मिली, उसकी पट्टी को आँखों पर चढ़ाये वे एक अरसे तक कोल्हू के बैल की तरह परिक्रमा करते रहे, जिसकी धुरी थी। 'थोथा आदर्शवाद'। दूसरे चरण में बाह्य जगत् और मनोजगत् की जिज्ञासाओं और जानकारियों का संश्लेषण- विश्लेषण करना सुरू हुआ और उनकी दृष्टि धीरे-धीरे यथार्थवादी होती गई। स्वयं संजीव के शब्दों में-''मेंरी दृष्टि यथार्थपरक बनती गई, मगर सब एक दिन में नहीं हुआ, कुछ तो धीरे-धीरे अपनी स्थिति के बदलने से और कुछ धक्कों से।'' संजीव के लिए ''लिखना महज एक मनोरंजन का साधन नहीं है बल्कि देश-काल, परिस्थितियों और इनका कारक शक्तियों के द्वंद्व से गुजरने का एक रूहानी सफर था जो धीरे-धीरे स्वाध्याय, अनुभव और सम्वेदना से पुष्ट होता रहा।'' उनकी हर रचना उनके लिए शोध की प्रक्रिया से गुजरती है। इस संदर्भ में उन्होंने लिखा है- ''लिखना मेरे खुद एक तनाव से गुजरने का कारण बना है और कितनी बार मुझे कितने 'ब्लैकहोल्स' में ले जाता है। मर्मान्तक और दमघोंटू एहसासों को झेलना पड़ा है। इसलिए मेरी हर रचना मेरे लिए शोध-प्रक्रिया

से गुजरना है और लिखना मेरे लिए चौबिसो घंटे की प्रक्रिया हैं, प्रश्न भी है, समाधान भी, यातना भी, और यातना से उठने का माध्यम भी, निपट एकांत गुफा भी है और पछाड़ खाती भीड़ की झंझा में उतरने का साधन भी, हर पल तिल-तिलकर मरना भी है और मौत के दायरों के पार जाने का महामंत्र भी।'' इस तरह आप समझ सकते है कि रचना अपनी रचना प्रक्रिया के दौरान किस तरह मोड़ लेती जाती है। उस दौरान कही बार स्वयं लेखक को भी पता नहीं होता की उनकी रचना का स्वरूप क्या होगा।

इस प्रकार हम कह सकते है कि साहित्य की किसी भी विधा की रचना- प्रक्रिया और सृजन, अपने मन के अनुसार करना मानव स्वभाव का अंग है। रचना के रूप अलग हो सकते हैं, लेकिन सृष्टि, देश, समाज, परिवार, प्रकृति, अनुभूति और अभिव्यक्ति का कलात्मक आकलन ही सृजनात्मकता हैं। आत्मा अभिव्यक्ति रचना की पहली प्रक्रिया है। इस अभिव्यक्ति के कई माध्यम हो सकते हैं, शब्द, रंग, रेखाएं, किसी भी माध्यम से जिसमें रचनाकार को सहजता और सुविधा महसूस हो, रचना की जा सकती है। रचनात्मक लेखन का सृजन करने के लिए कोई फार्मूला नहीं होता। उसके लिए अनुकूल परिस्थितियाँ और वातावरण, निरंतर अभ्यास और लेखन की अनुभूति हो तो कोई भी व्यक्ति अच्छा लेखक बनने की कोशिश कर सकता है।

रचना-प्रक्रिया आत्मनिष्ठ वस्तु है जिस तक रचियता के आलावा किसी की पहुँच नहीं होती हैं. रचना-प्रक्रिया का फल स्वयं रचना होती है। उस रचना को देखकर ही हम रचना-प्रक्रिया की समृद्धि और शक्ति के बारे में अनुमान लगा सकते हैं। रचना का विश्लेषण करते समय दो बातों को ध्यान रखना होता है। एक, रचनागत बिम्बों और अर्थों की प्रकृति और विस्तार। दूसरे, वह दृष्टि, जो बिम्बों और अर्थों की एकता के सूत्र में ग्रंथित करती है।

रचना-प्रक्रिया में वस्तुओं के पीछे निहित यथार्थ को समझना होता है। जीवन को एक प्रक्रिया के रूप में स्वीकार किया जाता है। रचनात्मक श्रेष्ठता रचना की प्रक्रिया पर निर्भर करती है जिस रचनात्मक अनुभव को रचनाकार किसी विशेष क्षण में उपलब्ध करता है, वो भी लंबी प्रक्रिया का परिणाम होता है। रचना-प्रक्रिया के प्रति जागरुक होने का अर्थ अपने परिवेश, समाज, परिवार के प्रति सचेत होना होता है।

संक्षेप में रचना-प्रक्रिया हर लेखक की अलग-अलग होती है। यह इस बात पर निर्भर करता है कि रचनाकार जो लिखना चाहता है उसके लिए किस विधा का चुनाव करता है। रचनाकार जब अपने अनुभवों की कला के किसी खास रूप-विधान को जिस प्रक्रिया में अभिव्यक्त करता है, उसे ही रचना-प्रक्रिया कहते है।

1.3.2.2 रचना-प्रक्रिया के विभिन्न सिद्धांत

रचना प्रक्रिया के संबंध में काव्यशास्त्र में चिंतन की पूरी परंपरा है। यथा- 'दैवी प्रेरणा का सिद्धांत', 'अनुकरण का सिद्धांत', 'स्वच्छंदतावादी सिद्धांत', 'कलावादी सिद्धांत', 'मनोवैज्ञानिक सिद्धांत', 'यथार्थवादी सिद्धांत'। रचना प्रक्रिया संबंधी पाश्चात्य और भारतीय काव्यशास्त्र की परंपरा से परिचय प्राप्त करते हैं।

1.3.2.2.1 दैवी प्रेरणा सिद्धांत

जिस तरह से भारतीय परंपरा वाल्मीकि के द्रवित होकर काव्य–सृजन की प्रक्रिया में प्रवृत्त होने का सिद्धांत काव्य–प्रक्रिया का सबसे पुराना सिद्धांत है। उसी तरह दैवी–प्रेरणा का सिद्धांत पाश्चात्य काव्यशास्त्र की परंपरा का सबसे पुराना सिद्धांत माना जा सकता है। प्लेटो ने काव्य और कला पर टिप्पणी करते हुए कहा था कि ''काव्य का जन्म कवि के मन:विक्षेप से होता है– यह विक्षेप एक प्रकार की दैवी प्रेरणा का परिणाम होता है।'' प्लेटो का यह मत किसी न किसी रूप में लंबे समय तक स्वीकार किया जाता रहा है। यह माना जाता है कि कवि और कलाकार काव्य और कला की रचना एक विशेष तरह की मन:स्थिति में करते हैं और मन:स्थिति ईश्वर प्रदत्त होती है जो उन्हें रचना करने की प्रेरणा देती है। यह भी माना गया है कि काव्य रचने के लिए लेखक में जो प्रतिभा होती है, वह जन्मजात होती है और ईश्वर प्रदत्त भी। इसे ना तो सीखा जा सकता है और न ही निर्मित किया जा सकता है। इस सिद्धांत के अनुसार रचना–प्रक्रिया एक रहस्यमय प्रक्रिया है जिसकी व्याख्या असंभव है। लेखक क्यों लिखता है! यह बताना नामुमकिन है। वह किसी आंतरिक शक्ति के वश में आकर रचना करता है।

1.3.2.2.2 अनुकरण का सिद्धांत

प्रसिद्ध यूनानी विचारक सुकरात के शिष्य, दार्शनिक और विचारवंत 'रिपब्लिक' ग्रन्थ के लेखक प्लेटो इस सिद्धांत के प्रवर्तक रहे है। इस सिद्धांत के पीछे नाटक का अनुभव है इसलिए भारत में भी यह भरत के समय से मौजूद है। प्लेटो के सिद्धांत के अनुसार प्रकृति सत्य का अनुकरण है और कला उस प्रकृति का अनुकरण है। इसलिए रचना सत्य से दुगुना दूर होती है। अरस्तु भी मानते थे कि कलानुभव मनुष्य के अनुकरण करने की प्रवृत्ति का नतीजा होता है। लेकिन उन्होंने सत्य से दुगुना दूर नहीं, बल्कि रचना को मूल वस्तु का पुनरुत्पादन माना। रचना मूल वस्तु की पुनरुत्पादन तो है किंतु उसके मौलिक रूप में नहीं, बल्कि उस रूप में जैसी वह ज्ञानेन्द्रियों को प्रतीत होती है। कहने का अभिप्राय यह है कि कोई वस्तु जैसी रहती है उसी रूप में रचना में अभिव्यक्त नहीं होती है। बल्कि ज्ञानेंद्रियों की सहायता से मन पर उसका जो अंकित होता है, उसी के अनुरूप वह रचना में अभिव्यक्त होती है, अर्थात् रचना वस्तु का प्रतिफलन नहीं, कलाकार के मनोगत बिम्ब का प्रतिफलन है। रचना मानव जीवन का आदर्शीकृत प्रतिरूपण है। इस प्रकार अनुकरण किसी एक अर्थ का वाचक नहीं है, उसका पूर्ण अर्थ कई तत्त्वों के योग से व्यक्त होता है– जिनमें प्रमुख है, पुनरुत्पादन, मानस बिंब, जीवन का सामान्य और आदर्श– पक्ष।

अनुकरण का यह सिद्धांत अपने मूलरूप में अब भी सही है लेकिन इस सिद्धांत की सीमा यह है कि मूलवस्तु और पुन:सृजित रचना के बीच की प्रक्रिया के बारे में कुछ नहीं बताता है। और न ही इस प्रश्न का उत्तर देता है कि कवि अनुकरण क्यों करता है? आखिर कवि रचना में मूलवस्तु में नया क्या जोड़ता है और क्यों जोड़ता है? क्या मूलवस्तु के स्वरूप में भी कुछ संशोधन करता है? इन सवालों का जवाब रचना को केवल अनुकरण मानकर नहीं पाया जा सकता।

1.3.2.2.3 स्वच्छंदतावादी सिद्धांत

'स्वच्छंदतावाद' अंग्रेजी के रोमांटिसिज्म का हिंदी रूपांतर है। भावों की स्वच्छन्द और उन्मुक्त अभिव्यक्ति स्वच्छंदतावाद है। विलियम वर्डसवर्थ अंग्रेजी के रोमांटिक धारा के प्रसिद्ध कवि का कविता के बारे में महत्त्वपूर्ण कथन है कि "कविता उच्छल आवेगों की स्वतःस्फूर्त अभिव्यक्ति होती है।" वड्र्सवर्थ के इस कथन के अनुसार भावप्रवणता ही काव्य का उत्स है। रोमँटिक कवि यह मानते थे कि सृजन के क्षणों में रचनाकार बाहरी प्रभावों से मुक्त होता है और वह प्रकृति की तरह सहज स्वाभाविक प्रक्रिया होती है। यह सिद्धांत कविता में अलंकारिता को उचित नहीं मानता। इसके संदर्भ में यह बात भी महत्त्वपूर्ण है कि इस सिद्धांत में रचना के संदर्भ में अनुभूति को प्रधान तत्त्व माना जाता है। इसके अलावा, इस सिद्धांत में कल्पना को साहित्य रचना के संदर्भ में महत्त्वपूर्ण माना जाता है। इन उल्लेखों से पता चलता है कि कविता की रचना को भावनाओं की सहज अभिव्यक्ति मानने का सिद्धांत भी काव्य और कला में लंबे समय से रहा है। यह अकेला ऐसा सिद्धांत है जो रचना-प्रक्रिया के संदर्भ में कल्पना के महत्त्व को स्वीकार करता है, लेकिन यथार्थ का अस्वीकार इसकी सीमा कही जा सकती है।

कविता में आत्म तत्त्व की प्रधानता मानने के कारण स्वच्छंदतावादी अनुभूति और भावावेग पर विशेष बल देते हैं। वड्र्सवर्थ ने न केवल विषय की बल्कि अभिव्यंजना की सरलता और स्वाभाविकता पर बल दिया। वे कविता की प्रकृति और गरमी जीवन के महत्त्व को इसीलिए स्वीकार करते हैं क्योंकि वहाँ का जीवन सरल और स्वाभाविक होता है। सरलता और स्वाभाविकता के कारण ही वे कविता में साधारण बोलचाल की भाषा पर बल देते हैं। शैली में भी सरलता और स्वभाविकता का आग्रह है।

स्वच्छंदतावादी सिद्धांत का दूसरा योगदान है- 'अनुभूति पर बल देना'। अनुभूति तत्त्व विचार और चिंतन तत्त्व पर हावी है। अनुभुत्ति के समान ही विचार और चिंतन तत्त्व की आवश्यकता होती है।

इस सिद्धांत का तिसरा योगदान है- 'कल्पना तत्त्व की प्रधानता।' केवल अनुभूति या भावनाओं के आवेग से कविता का सृजन नहीं होता है उसके लिए कवि में कल्पना शक्ति का होना आवश्यक है। कल्पना शक्ति से कवि वस्तुओं को नया रूप देता है, अपनी भावनाओं के लिए उपयुक्त शब्द खोजता है। कल्पना शक्ति यथार्थ की जगह नहीं ले सकती लेकिन इसके बिना यथार्थ पंगु है।

इस सिद्धांत की कमी यह है कि यह सिद्धांत यह नहीं बताता है कि किस तरह की भावनाएं रचना के उपयुक्त होती है। क्या भावनाओं की सहज अभिव्यक्ति के लिए उपयुक्त भाषा-शैली भी उतने ही सहज रूप में प्रकट हो जाती है या कवि को इसके लिए प्रयत्न करना पड़ता है।

1.3.2.2.4 कलावादी सिद्धांत

कलापक्ष पर विशेष बल देना, वस्तु के तुलना में कला को महत्त्वपूर्ण मानना तथा कला कला के लिए सिद्धांत कलावादी सिद्धांत है। कलावादी इस बात को स्वीकार नहीं करते कि कला का कोई बाहरी उद्देश्य हो सकता है। कलावादियों ने सबसे अधिक महत्त्व कला के बाहरी अंगों अर्थात् भाषा और शैली को दिया

है और उसे ही कला या काव्य की आत्मा माना है। वॉल्टर पीटर के अनुसार ''उत्कृष्ट शैली सामान्य से सामान्य विषय को महत्त्वपूर्ण बना देती है। इसलिए किसी भी कलाकार के लिए सार्थक और समर्थ शैली की साधना ही एक मात्र साधना है।'' पीटर ने यह भी कहा है कि ''सच्ची कला यानी आदर्श कला वही हो सकती है जिसके अंतर्गत विषय-वस्तु और रूप-विचार परस्पर एकाकार हो उठे।'' पीटर ने शब्द साधना को भी महत्त्वपूर्ण माना है। इसके लिए कठोर अध्यवसाय को आवश्यक बताया है। उनके अनुसार ''शैली की समस्या उपयुक्त शब्द, उपयुक्त रूपक, उपयुक्त काव्य, उपयुक्त भाषा पा सकने की समस्या है और यदि कलाकार इस उपलब्धि को पाने में सफल हो जाता है तो उसकी कला श्रेष्ठ रूप में अभिव्यक्त होती है।''

इटली के प्रसिद्ध दार्शनिक, अभिव्यंजनावाद सिद्धांत के प्रवर्तक बेनेडेटो क्रोचे का विचार है कि ''कला और अभिव्यंजना मूलत: एक ही है।'' क्रोचे कला को एक मानस व्यापार मानते हैं। उन्होंने मन के व्यापार को दो भागों में बाँटा है- धारणा और बिंब-निर्माण। कला का संबंध बिम्ब निर्माण से है। कला की विषयवस्तु ही सहज ज्ञान है। उनके अनुसार ''कला में सहज ज्ञान यानी अंत:प्रेरणा के अतिरिक्त कुछ नहीं है, ये अंत:प्रेरणा ही सर्वस्व है। कलाकार आपनी अंत:प्रेरणा द्वारा ही कला सृजन में प्रवृत्त होता है और अपनी कल्पना का आश्रय लेकर वस्तुत: उसे ही अभिव्यंजित करता है।'' सफल अभिव्यंजना को ही उन्होंने श्रेष्ठ कला माना है।

1.3.2.2.5 मनोवैज्ञानिक सिद्धांत

कला सृजन के संदर्भ में इस सिद्धांत को युगांतकारी माना जाता है। मनोविश्लेषणवाद के प्रवर्तक सिग्मंड फ्रायड साहित्य को अवचेतन मन की अभिव्यक्ति मानते हैं। उनके अनुसार ''समस्त कला-सृजन के मूल में रचनाकार की दमित और कुण्ठित कामवृत्तियाँ होती है। अनेक प्रकार की वर्जनाओं के कारण ये भावनाएँ कलाकार के अवचेतन मन में दबी रहती हैं और अवसर आने पर कला या साहित्य के माध्यम से उनको अभिव्यक्ति मिलती है। कलाकार अपनी प्रतिभा के द्वारा अपने अतृप्त वासनाओं को इस प्रकार का छद्म रूप देता है जो समाज की दृष्टि में ग्राह्य हो जाती हैं। रचनाकार की रचना इसी कारण सौंदर्य और आनंद प्रदान करती है, क्योंकि उस कला के अंतर्गत हम अपनी दमित वासनाओं व भावनाओं की सौंदर्यपूर्ण अभिव्यक्ति देखते हैं।'' फ्रायड के विपरीत प्रसिद्ध मनोवेता एडगर कला का मूल काम-प्रवृत्ति में न देखकर हीनता-भाव में देखते है- ''कलाकार सामाजिक दृष्टि से एक दुर्बल और अनुपयोगी प्राणी होता है। कला-सृजन के द्वारा वह एक तरह से अपनी उपयोगिता प्रमाणित करने का प्रयास करता है.'' एक अन्य मनोवेता कार्ल युंग कला के मूल में एक प्रकार का द्वंद्व मानते हैं, जो एक स्तर पर उसे अपने वैयक्तिक आकांक्षाओं की तुष्टि के लिए उत्प्रेरित करता है और दूसरे स्तर पर समस्त मानवता अभिलाषाओं की पूर्ति के लिए सर्जना के लिए ललकारता है। युंग कला के मूल में व्यक्ति के अवचेतन की स्थिति को स्वीकार न कर सामूहिक अवचेतन की बात करते हैं, जिनका संबंध प्राणिमात्र से है।

1.3.2.2.6 यथार्थवादी सिद्धांत

यथार्थवादी सिद्धांत के अनुसार साहित्य जगत् मानस व्यापार की उपज है। रचना क्षणों में नही की जाती है, बल्कि कोई भी रचना दीर्घकालीन मनन के पश्चात फूटती है। रचनाकार के मन में रचना-प्रक्रिया चलती रहती है और जब रचनाकार उस रचना को लेकर किसी उद्देश्य पर पहुँचता है तब रचना पैदा होती है। इस सिद्धांत के अनुसार यह माना जा रहा है कि साहित्य सामाजिक सत्य का वाहक होता है। रचना के द्वारा रचनाकार हमारे किसी ऐसे सामाजिक सत्य का उद्घाटन करता है जो मनुष्य के लिए हितकर होता है। इसलिए रचनाकार की रचना-प्रक्रिया में यह चलता रहता है कि साहित्य का कौन-सा सत्य 'बहुजन हिताय' होगा।

संक्षेप में हम कह सकते है कि रचना-प्रक्रिया हर लेखक की अलग-अलग होती है। यह इस बात पर भी निर्भर करता है कि रचनाकार जो लिखना चाहता है उसके लिए किस विधा का चुनाव करता है। रचनाकार जब अपने अनुभवों की कला के किसी ख़ास रूप-विधान को जिस प्रक्रिया में अभिव्यक्त करता है, उसे रचना-प्रक्रिया कहते है।

रचना-प्रक्रिया के सम्बन्ध में कई सिद्धांत प्रचलित हैं। रचना की क्षमता ईश्वर की प्रेरणा से आने वाली दैवी प्रेरणा का सिद्धांत हुआ, वास्तविक अनुभव के अनुकरण पर सृजन की कला अनुकरण सिद्धांत है, तीव्र भावनाओं की स्वतःस्फूर्त अभिव्यक्ति की कला स्वच्छंदतावादी सिद्धांत है, केवल आनंद और सौंदर्य दृष्टि के निहितार्थ रचना कलावादी सिद्धांत के रूप में हुई, मनुष्य की दमित भावनाओं की अभिव्यक्ति देने वाली रचना मनोवैज्ञानिक सिद्धांत के अनुसार हुई, और जिस रचना में जीवन के यथार्थ को अभिव्यक्ति मिली, वह यथार्थवादी सिद्धांत के तहत हुआ।

1.3.2.3 रचना का कारण

हमारे मन में सवाल उठता है कि कोई रचना कैसे लिखी जाती है? क्यों किसी खास क्षण में लेखक कलम उठाकर रचना करता है? इस प्रश्न के उत्तर में बहुत सी प्रतिक्रिया कुछ ऐसी होती है- लिखने का मूड बन गया, सरस्वती की कृपा हो गई या फिर धीरे-धीरे नियमित लेखन चल रहा है। इसके बावजूद हमें लिखने के लिए प्रेरणा की जरुरत होती है। यह प्रेरणा दो तरह की हो सकती है। १. तात्कालिक प्रेरणा और २. दीर्घकालिक प्रेरणा।

1.3.2.3.1 तात्कालिक प्रेरणा

अगर आपको कोई घटना, कोई अनुभव हिला देता है। वह घटना या अनुभव लेखक को लिखने की प्रेरणा देता है। मतलब तात्कालिक प्रेरणा लेखक को तत्काल सृजन के लिए प्रेरित करती है। उदा. जब आदमी ने पहली बार चंद्रयान चंद्रमा पर भेजा ठीक उसी वक्त बहुत से कवियों ने कविताएँ लिखी। युद्ध के समय या किसी ऐसे समय जब पूरा देश या समाज किसी गहरे संकट से घिरा होता है तब बहुत से साहित्यकार रचनाएँ लिखते है। उन्हें ही हम तात्कालिक प्रेरणा कह सकते है। तात्कालिक प्रेरणा से लिखी गई रचना प्रभावशाली हो, यह जरुरी नहीं है। बल्कि इसके विपरीत वे अल्पजीवी साबित होती हैं।

तात्कालिक प्रेरणा से उत्पन्न वे ही रचनाएँ स्थायी बन पाती हैं जिनके पीछे रचनाकार की दीर्घ साधना छुपी होती है।

1.3.2.3.2 दीर्घकालिक प्रेरणा

अंग्रेजी भाषा के प्रसिद्ध कवि एजरा पाउंड ने कहा था कि ''लेखक समाज का एंटीना होता है। वह हर संवेग, हर संदेश को ग्रहण करता है और समय आने पर इन्हीं तरंगों को नये रूप में समाज को वापस कर देता है।'' यह क्रिया लगातार चलती रहती है। रचना तो एक विशेष क्षण में घटित होती है, लेकिन उसके पहले की सारी क्रिया मानस में निरंतर चल रही होती है। इसमें लेखक की जीवन-दृष्टि का बड़ा महत्त्व होता है। वह किसे महत्त्व देता है, कौन-सी बातें उसे ज्यादा जरुरी लगती हैं इत्यादि। इसीलिए कई लेखक पहले से योजना बनाकर लिखते हैं। लेकिन वे भी लिखने के क्षण का इंतजार करते हैं। कोई भी तात्कालिक घटना बस बहाना होती है। सारी सामग्री इकठ्ठा रहती है, एक विशेष अनुभव, स्थिति या घटना केवल उसे उकसा देती है। वैज्ञानिकों का कहना है कि एकदम शुरू में जब किसी जीवन की उत्पत्ति हुई तो सारे तत्त्व मौजूद थे, केवल एक संयोग की प्रतीक्षा थी जो घटित हुई और जीवद्रव्य की सृष्टि हुई। इसी तरह लिखने में भी हैं।

संक्षेप में हम कह सकते है कोई रचनाकार रचना क्यों करता है, इस प्रश्न का उत्तर कई दृष्टियों से दिया जाता है। प्रत्येक के पीछे कोई ना कोई प्रेरणा जरूर होती है। यह प्रेरणा दो तरह की होती है- तात्कालिक प्रेरणा और दीर्घकालिक प्रेरणा। तात्कालिक प्रेरणा लिखने के लिए तुरंत लिखने का कारण होती है, जैसे किसी अख़बार या पत्रिका के लिए किसी संपादक या प्रकाशक का किया गया अनुरोध, किसी घटना का प्रभाव इत्यादि। जबकि दीर्घकालिक प्रेरणा का तात्पर्य है, जो उसके लेखन कर्म के पीछे हमेशा सक्रिय रहता है।

1.3.2.4 रचना का उद्देश्य

रचना का उद्देश्य विवेचित करना आसान कार्य नहीं है पर प्रश्न उठना बहुत स्वाभाविक है। रचनाकार किस लिए रचना कर रहा है? वह रचना कर, उसको सबके साथ बांटना क्यों चाहता है? आखिर ऐसा करने में उसका उद्देश्य क्या है यानी अंततः उसके लेखन का उद्देश्य क्या है? किंतु कही बार लेखक बिना किसी उद्देश्य को लेकर भी रचना करता है। मतलब यह कि साहित्य-यात्रा में कवियों ने काल और स्थितियों के अनुसार साहित्य का उद्देश्य बार-बार बदला दिखाई देता है। साहित्य के उद्देश्य से इसमें विस्तार आया, जिसने साहित्य को हर युग में नवीनता बनाये रखा। पर जैसे उनके संबंधों में बंट कर भी मनुष्य वही एक मनुष्य रहता है जिसके साँस लेने में जीवित रहने का कोई एक अर्थ रहता है और उसे अर्थ की खोज में वह जीवन भर लगा रहता है।

1.3.2.4.1 स्वान्तः सुखाय

साहित्य के आरंभ में संस्कृत के कई विद्वानों ने साहित्य के विविध प्रयोजनों की चर्चा की हैं। आचार्य मम्मट ने काव्य के छह प्रयोजन बताए हैं-

''काव्यं यशसे अर्थकृते व्यवहारविदे शिवेतरक्षतये।
सद्यः परनिर्वृतये कांतासम्मिततयोपदेशयुजे।।

अर्थात काव्य-रचना का प्रयोजन यशप्राप्ति, अर्थप्राप्ति, लोक-व्यवहार की कुशलता, अशुभ या अमंगल का नाश, परमशांति की प्राप्ति और कांता के समान मधुर उपदेश है। बाद के कुछ चिंतकों ने लोकहित, स्वांत: सुखाय, सामाजिक परिवर्तन आदि को भी साहित्य का प्रयोजन स्वीकार किया है। इन विद्वानों के बताएं प्रयोजनों को आधुनिक संदर्भों से जोड़कर देखें तो बहुत सारी नई बातों का पता चलता है।

हम देखते है कि कोई भी साहित्यकार सबसे पहले अपने सुख के लिए, अपने आनंद के लिए लिखता है। अगर रचनाकार अपने सृजन से स्वयं तुष्ट नहीं होता तो उसकी रचना दूसरों को कैसे आनंदित करेगी। लेकिन इसके साथ ही यह बात भी महत्त्वपूर्ण है कि अगर लेखक अपने लिए ही लिखता तो फिर वह क्यों चाहता है कि उसकी रचना को अधिक से अधिक लोग पढ़े। केवल अपने लिए या अपने को आनंदित करने के लिए रची गई रचना पाठकों तक पहुंचाने की आवश्यकता नहीं होती। अगर ऐसी रचना लिखी भी जाय तो ऐसी रचना का सामाजिक मूल्य क्या होगा। जब उसकी रचना समाज के समक्ष नहीं होगी तो उसकी श्रेष्ठता और निकृष्टता का मूल्यांकन करने की भी आवश्यकता नहीं होगी। इसलिए स्वान्त:सुखाय रचना का अर्थ केवल इतना है कि वह रचना सबसे पहले स्वयं रचनाकार को आनंदित करती है।

1.3.2.4.2 यश की प्राप्ति

कोई भी साहित्यकार रचना क्यों करता है? इसका कोई सटीक उत्तर नहीं है। प्रत्येक रचनाकार का अपना लक्ष्य होता है। मनोरंजन करना, स्वान्त:सुखाय, यश की प्राप्ति, सामाजिक परिवर्तन इत्यादि सभी किसी भी साहित्यकार के लक्ष्य हो सकते हैं। संस्कृत विद्वान यश की प्राप्ति को काव्य का प्रयोजन स्वीकार करते हैं, परंतु आज के संदर्भ में देखें तो बहुत सारे साहित्यकारों ने अपने अभिव्यक्ति की लालसा को जीवित रखने के लिए भी साहित्य की रचना की है। महान साहित्यकार कभी भी यश के लिए नहीं लिखता है। यह अलग बात है कि उसकी रचना की प्रासंगिकता और उपादेयता उसे यश देने का कार्य करती है। यश की प्राप्ति कोई बुरी बात नहीं है, किंतु अपने साहित्य में सामाजिकता को बनाए रखना बहुत आवश्यक है। लोकप्रियता कोई अवगुण नहीं है लेकिन साधना और मेहनत करके यश प्राप्त करने वालों की हिंदी साहित्य में प्राय: कमी है।

साहित्यकार कोई भी हो उसकी इच्छा हमेशा यह रहती है कि जो उसके द्वारा रचा जा रहा है उसका एक पाठक वर्ग हो और उसका मूल्यांकन भी हो। अपने लिखे के लिए पाठक की इच्छा रखना कुछ गलत भी नहीं है। साहित्य वही उत्तम होता है जो अधिक से अधिक लोगों तक पहुंचता है। जैसे कि ठहरा हुआ जल जैसे सड़ जाता है वैसे ही साहित्य का संचयन उसकी उपयोगिता को खत्म कर देता है। अच्छे साहित्य का प्रयोजन ही उसके विस्तार से पूरा होता है, वरना लेखनी का कुछ भी अर्थ नहीं। साहित्यकार चाहे कितना भी अन्तर्मुखी हो उसका साहित्य विस्तार माँगता है। हम देखते है कि मध्यकाल में संत कवियों की कविताओं को धार्मिक उपदेश कहकर उनकी अवहेलना की गयी थी। लेकिन उनका प्रयोजन सिर्फ भक्ति का

प्रचार नहीं था बल्कि निराश और हताश जनता को ईश्वर का आधार प्रदान कर उनको जागृत करना रहा है। इस प्रकार देखें तो साहित्य का प्रयोजन मात्र यश नहीं है, बल्कि उसके साथ अपने विचारों और भावनाओं का विस्तार भी है। यश उसकी रचना की उपयोगिता के अनुसार मिलता है।

1.3.2.4.3 अर्थ की प्राप्ति

साहित्य के प्रयोजन में अर्थ की प्राप्ति यह भी एक प्रयोजन माना गया है। हम देखते है कि रीतिकाल में अधिकांश कवि अर्थ की प्राप्ति के लिए रचना करते थे। किसी भी व्यक्ति के जीवन में आर्थिक आवश्यकता को नकारा नहीं जा सकता। हम देखते है कि आरंभिक समय में कवि केवल रचनाकर्म के द्वारा ही अपना परिवार चलाता था। लिहाजा तब आर्थिक पक्ष महत्त्वपूर्ण मुद्दा रहा। साहित्य के विकास के साथ साहित्य को लेकर लोगों की अवधारणा भी बदली। आजादी के बाद साहित्य ने अपनी भूमिका को बदलते हुए सामाजिक आंदोलनों में भी हिस्सेदारी निभायी। जहाँ साहित्य को सामाजिक सुरक्षा के लिए एक हत्यार के रूप में प्रयोग किया गया। समय के साथ लेखकों की संख्या में भी बढ़ोतरी हुई, परंतु सम्मान और धन देकर सुनने और पढ़ने वालों की कमी भी हुई। लिहाजा साहित्य अब जीविका का साधन नहीं बन सकता। हिंदी में अभी ऐसी स्थिति नहीं है कि लेखक केवल लिखने से आजीविका की जरुरतें पूरी कर सके। इसलिए यहाँ शौकिया लेखन अधिक है। बहुत पहले प्रेमचंद ने कहा था कि ''साहित्यकार को जीविका के लिए छोटी-मोटी नौकरी जरूर कर लेनी चाहिए।'' प्रेमचंद की बात आज भी सच है आजकल अधिकांश लेखक छोटी-बडी नौकरी में रहते हुए साहित्य लिखते है। जो पेशेवर लेखक हैं उनमें से कुछ लंबे संघर्ष के बाद सुरक्षित स्थिति में पहुँचे हैं। केवल वे ही कला की कीमत पर जीविका अर्जित नहीं करते। बाकी पेशेवर लेखक लेखन का धंधा करते हैं।

1.3.2.4.4 सामाजिक परिवर्तन

प्रसिद्ध साहित्यकार प्रेमचंद साहित्य का प्रयोजन समाज के हित में ही देखने के पक्षधर हैं। उन्होंने अपने कई व्याख्यानों और लेखों में इसका जिक्र भी किया है उनका मानना था कि ''मन के विकार को भावों का आधार देना साहित्य का प्रयोजन है, लेकिन इसके पीछे का उद्देश्य मनुष्य का हित ही होना चाहिए।'' प्रेमचंद का पूरा साहित्य हाशिए पर खड़े मनुष्य और मनुष्यता के हित में लिखा गया साहित्य है। वह समाज की सच्चाई लिखने के लिए प्रयासरत थे। उन्होंने इस सत्य की खोज के लिए लोगों को उकसाया और लिखा- ''साहित्य जीवन की आलोचना है, इस उद्देश्य से सत्य की खोज की जाए। सत्य क्या है और असत्य क्या है, इसका निर्णय हम आज तक नहीं कर सके। एक के लिए जो सत्य है, वो दूसरे के लिए असत्य है।'' प्रेमचंद का यह भी मानना था कि साहित्यकारों को उन लोगों के लिए अधिक लिखना चाहिए जो अपने मार्ग से भटके हैं। वह साहित्य का प्रयोजन समाज को दिशा देना भी मानते है। जो लोग बौद्धिक हैं, वक्त की नजाकत और समस्या को समझ सकते हैं, उनके लिए लिखने से साहित्य का प्रयोजन अधूरा ही रह जाएगा साहित्य तभी सफल होता है जब वह भटके और नासमझ लोगों को सही रास्ता दिखाये।

प्रेमचंद साहित्य को मार्गदर्शक मानते हैं। जो रोचक-रसभरा दिखता, हमारे अवगुणों को दूर करने का प्रयास करता है। प्रेमचंद एक सच्चे साहित्यकार हैं उन्होंने साहित्य को समाज-सुधार और मानसिक खुराक का साधन माना था। साहित्य का प्रयोजन समय समय पर नए संदर्भ से भी जुड़ता रहा है। हर समय में मनुष्य और समाज साहित्य के केंद्र में रहा है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी जी ने साहित्य को मनुष्य के मानवीय गुणों के परिष्कार का साधन माना है।

साहित्य का प्रयोजन सामाजिक रूढ़ियों और विसंगतियो को दूर करना भी है। समय-समय पर साहित्य ने यह करके भी दिखाया है। मध्यकाल में संत कबीर ने समकालीन सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक आडंबरों के खिलाफ आवाज बुलंद की। सत्ता से मुठभेड़ भी की। कबीर और उनका पूरा मण्डल लगातार निचले तबके के उत्थान के लिए संघर्षरत रहा। उन्हें लोभ और मोह से मुक्त कर वास्तविकता से परिचित कराया।

आधुनिक साहित्य में साहित्यिक विधाओं के विकास के साथ विरोध विकसित हुआ। साहित्यकारों के तमाम आंदोलनों द्वारा समाज को सुधारने का प्रयास किया। इन सभी बातों को केंद्र में रख कर विचार करें तो यह स्पष्ट हो जाता है कि साहित्य का पहला संबंध आत्मा से है, फिर उसकी शुद्धि से है। आत्मा की शुद्धि के बिना साहित्य का निर्माण ही नहीं हो सकता, न ही उसका प्रयोजन पूरा हो सकता है। वैसे देखा जाए तो साहित्य का पहला प्रयोजन समाज व विकास का उन्नयन ही है। अर्थ और यश की प्राप्ति तो मनुष्य की सहज और स्वाभाविक प्रक्रिया है। अगर साहित्य किसी की जीविका का आधार बने तो कुछ बुरा नहीं है, परंतु धन और यश के लिए साहित्य की बुनियादी प्रवृत्तियों से समझौता करना साहित्य का सच्चा प्रयोजन नहीं हो सकता।

संक्षेप में लेखक मूलत: तीन कारणों से प्रेरित होकर लिखते हैं- केवल अपने सुख के लिए, धन या यश पाने के लिए और सामाजिक परिवर्तन के लिए। लेखक के लेखन के पीछे इनमें से कोई एक उद्देश्य मुख्य प्रेरणा के रूप में मौजूद रहता है यद्यपि अन्य उद्देश्य भी रचना से पूरे हो सकते है। लेखक के मन में यह बात भी हो सकती है कि किसके लिए लिख रहा है यानी उसका पाठक कौन है। जैसा उसका पाठक होगा रचना भी कुछ वैसी होती है। मतलब लेखक रचना से मनोरंजन करना चाहता है, धन कमाना चाहता है। यश कमाना चाहता है। सामाजिक परिवर्तन करना चाहता है या सिर्फ रचना करके लेखन का सुख चाहता है। लेखक रचना से जो चाहता है, रचना का स्वरुप भी वैसा ही बनता है।

1.3.2.5 विषयवस्तु का निर्धारण

इसमें हम विषयवस्तु के निर्धारण पर विचार करेंगे। वस्तुत: विषयवस्तु का निर्धारण करना बहुत आसान नहीं होता है। जब हम कोई गीत, कहानी, निबंध लिखने का विचार करते हैं तो सीधे काग़ज, कलम लेकर नहीं बैठ जाते। लिखने से पहले कोई विचार हमारे मन में ज़रूर उठता है। यह विचार, भाव, अनुभूति, घटना या वैचारिक सूत्र के रूप में हो सकता है। ये सत्य या काल्पनिक घटना से उत्पन्न हो सकता है। विषयवस्तु का संबंध इसी विचार, संवेदना, घटना और अनुभूति से होता है। लेकिन रचना में यह किस रूप में प्रतिफलित होता है, इसे समझना अति आवश्यक है। इसका कोई बनाया फार्मूला नहीं होता है। इस प्रश्न पर

हम विभिन्न उदाहरणों द्वारा विचार करेंगे। विषयवस्तु के निर्धारण की समस्या वस्तुगत भी है और विधागत भी है। वस्तुगत समस्या इस अर्थ में की रचना में विषयवस्तु के निर्धारण का आधार क्या है? संवेदना, घटना या विचारधारा। निश्चय ही इनमें से किसी के महत्त्व को कम करके नहीं देखा जा सकता परंतु रचना में ये किस रूप में अभिव्यक्ति पाते हैं, इसे भी समझना आवश्यक है। इसी प्रकार विभिन्न विधाओं के आधार पर भी विषयवस्तु का निर्धारण सम्भव होता है। निबंध, उपन्यास, कहानी या कविता में विषयवस्तु का स्वरूप एक-सा नहीं होता। रचनाकार रचना से पूर्व विषयवस्तु की कल्पना किस रूप में करता है, प्रस्तुत पाठ में इस पर भी विचार किया गया है।

विषयवस्तु और रूप रचना के ये दो पक्ष होते हैं। विषयवस्तु के बिना रचना सम्भव नहीं है। लेकिन प्रत्येक रचना में विषयवस्तु का निर्धारण रचना के स्वरुप को निर्धारित करने में केन्द्रीय भूमिका निभाता है।

1.3.2.5.1 विषयवस्तु के निर्धारण का आशय

जब हम कुछ लिखते हैं तो उसके पीछे हमारा निश्चित उद्देश्य होना चाहिए। लिखने के लिए हम एक साथ कई चीजें लिख रहे होते हैं जैसे- कविता, कहानी, उपन्यास, नाटक, निबंध, (ललित निबंध) संस्करण, रेखाचित्र, यात्रावृत्तांत, एकांकी इत्यादी सभी सृजनात्मक लेखन के उदाहरण है।

सबसे पहले हम विषयवस्तु से क्या अभिप्राय है? इसे जानने का प्रयास करते है। विषयवस्तु का अर्थ है- 'जो हम कहना चाहते हैं, जो हमारे कंटेंट में है, जो हमारा कथ्य में है'। रचना में दो पक्ष होते है- विषयवस्तु और रूप। इसे अंतर्वस्तु और शिल्प भी कहा जाता है। इसे ही भावपक्ष और रूपपक्ष भी कहा जाता है। अंग्रेजी में इसे 'कंटेंट' और 'फॉर्म' कहा जाता है। सवाल यह है कि क्या विषयवस्तु के बिना रचना असम्भव है? क्या रचना की कोई विषयवस्तु होगी? इसका उत्तर सकारात्मक ही होगा। विषयवस्तु कुछ भी हो ही नहीं तो फिर रचना कैसे होगी? विषयवस्तु या कथ्य सपाट न होकर सूक्ष्म हो सकता है पर होगा जरूर ही। प्रसिद्ध कहानीकार जैनेन्द्र कुमार अपनी कहानियों के बारे में लिखते हैं- ''कहानी सुनाना मेरा उद्देश्य नहीं।'' पर सभी जानते है कि वे कोई ना कोई बात आपनी कहानियों में कहते जरूर है। चाहे वो कितनी ही सांकेतिक क्यों न हो। हम देखते है कि बड़े लेखकों की खूबी यही होती है कि वे संकेत में कहना जानते हैं। सीधे-सादे ढंग से इस समस्या को देखें तो विषयवस्तु के निर्धारण का लाभ यह है कि हम अपने रचना को अनावश्यक फैलाव से बचा सकते है। उसे लक्ष्यात्मक बना सकते हैं। अर्थात् कोई रचना पढ़े तो बता सके कि क्या निश्चित चीज उसने उस रचना से ग्रहण की। कैसे प्रतिक्रिया बनी। क्या कोई संदेश मिला। क्या कोई मानव-समस्या मार्मिक ढंग से उजागर हुई। क्या कोई चरित्र अविस्मरणीय छाप छोड़ गया। तो विषयवस्तु निर्धारण का उद्देश्य है- रचना को निश्चित अर्थ या संकेत का व्यंजक बनाना। यह न लगे कि रचना समाप्त करने पर कुछ हासिल ही नहीं हुआ। यदि लिखने की सार्थकता है तो विषयवस्तु के निर्धारण की भी सार्थकता है।

विषयवस्तु के निर्धारण का तात्पर्य यही है कि रचना के उस केन्द्रीय भाव या विचार को समझाना जिससे प्रेरित होकर लेखक रचना के सृजन की ओर प्रवृत हुआ है। कोई भी लेखक निरुद्देश्य रचना नहीं करता है। उद्देश्य से विषयवस्तु का निर्धारण सम्भव होता है।

1.3.2.5.2 विषयवस्तु का अर्थ

अब यदि हम मान चुके हैं कि विषयवस्तु निर्धारण की सार्थकता है, इसका अपना उद्देश्य है और उसकी उपेक्षा नहीं करनी चाहिए तो इस बात को और स्पष्ट कर लें कि विषयवस्तु क्या है, क्या-क्या चीजें विषयवस्तु में शामिल हैं। जैसे- घटना, विचार, भाव, संवेदना इत्यादि ये सारी चीजें हमारे कथ्य का हिस्सा कैसा होती हैं। हमारा पूरा परिवेश हमारा कथ्य हो सकता है। पर विषयवस्तु के रूप में हम निश्चित चुनाव करते हैं, घटनाएँ नहीं, घटना-विषय चुनते हैं। पूरा समाज नहीं, उसकी कोई झलक, कोई चरित्र ले आना चाहते हैं। इस बात को बहुत शास्त्रीय न मानें कि पहले लोग रचना के दो पक्ष मानते थे- भावपक्ष और कलापक्ष। वही भाव अब अंतर्वस्तु है, विषयवस्तु है। भाव कहने से एक सीमा बन जाती थी। हालाँकि भाव कहने वाले भी जानते थे कि भाव बिना आधार के होगा ही नहीं। आधार यानी विभाव। विभाव का अर्थ है- भाव का कारण। नायिका को देखकर नायक के मन में प्रेम का भाव उत्पन्न हो तो नायिका को भाव का कारण यानी विभाव माना जाएगा। इसी प्रकार किसी कहानी, उपन्यास या कविता को पढ़ते हुए जो भाव उत्पन्न होते हैं, उन भावों की उत्पत्ति का कारण क्या है, इस पर विचार करते हैं। क्या वह कारण कहानी, कविता आदि में निहित विषयवस्तु नहीं है?

हम एक उदाहरण के माध्यम से विषयवस्तु को समझने का प्रयास करते है। 'ईदगाह' प्रेमचंद की प्रसिद्ध कहानी है। वह बहुत सीधी-सादी है पर प्रभाव से बेजोड़। इस कहानी में ईद यांनी की खुशी के त्यौहार का वर्णन है। मुसलमान के घरों में चाहे वे अमीर हों या गरीब खुशी उमड़ रही है। सब मेला जा रहे हैं। बड़े भी, बच्चे भी। कई-कई तरह के घरों से। उन्हीं बच्चों से एक है हामिद उसके घर में उसके आलावा सिर्फ बूढी दादी है नाम है- 'अमीना'। उन्हें दो-चार पैसे में गुजर करना पडता है। हामिद के पास इतने पैसे नहीं है कि खिलौने ख़रीदे या मिठाइयाँ खरीदे। जब दोस्त उसे बुलाते हैं, वह उनकी निगाह से बचाता है। तब तक वह जा पहुंचता है एक लोहे-लक्कड़ वाली दुकान पर। वहाँ उसकी निगाह एक चिमटे पर जाती है। उसे देख हामिद को ख्याल आता है कि दादी की उंगलियाँ रोटी सेंकते जल जाती है। बस मोल-तोल करके चिमटा खरीद लेता है। हामिद के दोस्त पहले उसकी हँसी उड़ाते हैं, फिर वो चिमटे के पक्ष में निरस्त करने वाली दलीलें देते जाता है और सबको पस्त कर देता है। वही चिमटा अचानक जैसे नायक हो जाता है। सब उसे हात में लेना, छूना, देखना चाहते हैं। इस अनोखी विजय के बाद जब हामिद घर पहुँचता है तो जिनके लिए चिमटा लाया था वो दादी अपना सर पीट लेती है। प्रेमचंद जी ने कहानी के अंत में इतना बताते हैं कि- ''और अब एक बड़ी विचित्र बात हुई। बुढ़िया अमीना बालिका बन गई। वह रोने लगी। दामन फैला कर हामिद को दुआएँ देती जाती थी और आंसू की बड़ी बुँदे गिराती जाती थी। हामिद इसका रहस्य क्या समझता।

मुख्य बात यह है कि कहानी उतनी ही नहीं है जितनी सारांश के रूप में बताया जा रही है। कहानी का विकल्प कहानी का सारांश है भी नहीं। जो घटनाएँ जिस तरह बतायी जा रही हैं। वह सब क्या विषयवस्तु है। क्या सारी विषयवस्तु का पूर्वनिर्धारण संभव है। बात कहने में थोड़ी कठीण लग सकती है पर सच्चाई यह है कि रचना का एक सुगठीत तात्पर्य होता है जो बीज भाव के रूप में रचना में मौजूद होता है। एक संगठित तात्पर्य के रूप में ही विषयवस्तु का पूर्वनिर्धारण संभव है।

यह बीज-भाव ही रचना में विषयवस्तु के रूप में विस्तार पाता है। रचना का आस्वादन करते हुए पाठक इसी बीज-भाव को जानने की कोशिश करता है। कहने का मतलब यह है कि लिखने में ही विषयवस्तु का पूर्व निर्धारण संभव है। लिखने में ही विषयवस्तु अपना रूप या आकार ग्रहण करती है। यहाँ यह भी जानना जरुरी है कि रचना की विषयवस्तु का निर्धारण रचनाकार की संवेदना, अनुभूति, विचारधारा की समस्या भी है और विधागत समस्या भी है। पहले तो रचना की विधा और प्रकृति का सवाल ही उठता है। वैचारिक विषय पर निबंध लिखते हुए विषयवस्तु का निर्धारण जिस अर्थ में जरुरी होगा, कविता या कहानी लिखते हुए वह उसी अर्थ में जरुरी नहीं होगा। कहानी में तो फिर भी संभव है कि कोई वास्तविक संदर्भ, यथार्थ, समस्या, चरित्र आदि ऐसा दबाव डाल सके कि विषयवस्तु की कुछ स्पष्ट रूपरेखा बन सकती हो। उसकी तुलना में कविता जो रचनात्मक विधाओं में अधिक सूक्ष्म और संवेदना आश्रित विधा है, विषयवस्तु के निर्धारण की पहले से छूट नहीं देती। अब अधिक से अधिक हम यह मान कर चल सकते है कि विषयवस्तु के निर्धारण की एक ही सार्थकता है- 'रचना में कथ्य की एक सीमा रेखा लेना।' जिसे अनावश्यक भटकाव या फैलाव न हो। रचना कुछ निश्चित कहे, वह केवल हल्का भावोच्छवास न हो। इसी अर्थ में विषयवस्तु का निर्धारण एक विचारणीय मुद्दा है और इसी दृष्टि से ही समस्या के विभिन्न पहलुओं पर आगे विचार किया जाएगा।

1.3.2.5.3 विषयवस्तु का निर्धारण : विभिन्न समस्याएँ

रचना में विषयवस्तु के निर्धारण का महत्व क्या है, अब आप समझ गए होंगे। विषयवस्तु के बारें में विचार करते हुए लेखक का सामना दो समस्याओं से होता है- वस्तुगत और विधागत समस्या। वस्तुगत समस्या के अंतर्गत संवेदना, अनुभूति विचारधारात्मक इत्यादि प्रश्न होते हैं। जबकि विधागत में विभिन्न विधाओं के परिप्रेक्ष्य में विषयवस्तु के निर्धारण किया जाता है।

1.3.2.5.3.1 वस्तुगत समस्या

कोई भी रचना हम क्यों लिखते हैं, यह जानने के लिए हमें अपने भीतर झाँकना चाहिए। सर्जनात्मक लेखन में बहुत महत्त्वपूर्ण है कि हम कितने संवेदनशील हैं। हम आसपास की प्रकृति से, जनजीवन से, सामाजिक परिवर्तनों से कितना लगाव अनुभव करते हैं, हम चीजों को कितने विस्तार में, कितने गहराई से देख पाते है। स्पर्श, रूप, गंध की हमारी संवेदना में कितनी सजगता है। सूरज या चंद्रमा सभी के लिए निकलते हैं लेकिन उनका प्रभाव सभी पर अलग-अलग रूप से होता है। कोई प्रभावित होकर कविता लिखता है तो कोई किसी और तरह की रचना करता है, कोई कुछ भी नहीं लिखता है। जीवन जैसे-जैसे

चलता रहता है वैसे-वैसे अनुभव बनते रहते हैं। सभी के अनुभव अलग-अलग होते हैं। रचना के दौरान रचनाकार उन अनुभवों में से कुछ चुनिंदाको ले लेता है। ये अनुभव उसके जीवन के विषयवस्तु की दृष्टि से प्रगाढ़ होते है। यह प्रगाढ़ता ही अनुभूति का दबाव होती है। अनुभूति के पश्चात् ही विचारधारा का प्रश्न उठता है। किसी लेखक के लिए विचारधारा का प्रश्न महत्त्वपूर्ण हो सकता है लेकिन सृजनात्मक लेखन में विचारधारा की कट्टरता लाभप्रत नहीं होती है। विचारधारा का मतलब एक विशेष प्रकार की बंधी हुई विचार व्यवस्था से है, जैसे गांधीवादी विचारधारा, मार्क्सवादी विचारधारा इत्यादि। विषयवस्तु के निर्धारण में विचारधारा महत्त्वपूर्ण हो सकती है लेकिन उसी स्थिति में, जब वह संवेदना और अनुभूति में घुलमिल कर आए। फिर भी वह बहुत प्रकट भी न हो, छिपी रहे, पृष्ठभूमि में काम करे। सीधी सरल विचारधारा निष्कर्ष के साँचे में उपयोगी नहीं होती।

1.3.2.5.3.2 विधागत समस्या

दूसरे स्तर पर विषयवस्तु के निर्धारण में विधागत समस्या आती है। जैसे कि पहले कहा गया है कि वैचारिक विषय पर निबंध लिखते हुए विषयवस्तु का निर्धारण जिस अर्थ में जरुरी होगा, कविता या कहानी लिखते समय उसी अर्थ में जरुरी नहीं होगा। उदाहरण के लिए, जब आचार्य रामचंद्र शुक्ल मनोविकार संबंधित निबंध लिखते हैं तो सारी व्यक्ति व्यंजकता के बावजूद विषयवस्तु का निर्धारण अनिवार्य होता है। पूरे निबंध की व्यवस्था के पहले से लेखक के मन में मौजूद जान पड़ती है। 'करुणा' पर निबंध लिखा जा रहा है तो पहिले से स्पष्ट है कि करुणा का हमारे भावलोक में क्या स्थान है, माननीय समाज में करुणा क्या भूमिका निभाती है, कौन से भाव उसके लिए सहयोगी हैं, कौन से विरोधी। हजारीप्रसाद द्विवेदी जब 'अशोक के फूल' जैसी व्यक्तिव्यंजक निबंध लिखते हैं तब भी पूर्वनिर्धारण की एक झलक मिलती है। 'अशोक के फूल' का चुनाव ही क्यों किया, इसीलिए कि रूप में, जिस वैभव के साथ, जिस स्वप्न की तरह पहले था, अब नहीं रहा। जो था वह अब नहीं रहा। जो है वह उसी रूप में, नहीं रह जाएगा। पर जीवन अविराम है। संस्कृति में उथल-पुथल होती रहेगी पर उसका प्रवाह बना रहेगा। मुक्त शैली के इस निबंध में भी, जिसमें लचीलापन पर्याप्त है, कुछ भी कहने की छूट ली जा सकती है- विषयवस्तु का निर्धारण अपनी झलक देता है।

संक्षेप में कह सकते है कि विषयवस्तु के निर्धारण की समस्या को दो आधारों पर समझा जा सकता है- वस्तुगत आधार पर और विधागत आधार पर। घटना, संवेदना और विचारधारा वस्तुगत आधार हैं और विषयवस्तु के निर्धारण में इनकी भूमिका होती है। इसी प्रकार विभिन्न विधाओं की भिन्न-भिन्न प्रकृति भी विषयवस्तु के निर्धारण में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

1.3.2.5.4 विषयवस्तु का प्रतिपाद्य

अब हम ऐसी जगह आ गए है जहाँ विषयवस्तु के अर्थ को या विषयवस्तु के प्रतिपाद्य को ठीक-ठीक जान सकते हैं। विषयवस्तु कहने से कही बार भ्रम पैदा होता है। कुछ लोग कहानी में कथानक को विषयवस्तु समझ लेते हैं। कविता में भाव को या केंद्रीय भाव को विषयवस्तु समझ लेते हैं। कुछ भ्रम

स्वाभाविक भी है। हम पहले रचना के बीज-भाव की चर्चा कर आये हैं। पर वहीं यह भी कहा गया है कि यह मान्यता बहुत कुछ सुविधा के लिए सच है। सच तो यह है कि विषयवस्तु भी रचना में क्रमश: अपना या आकार ग्रहण करती है, अपना अर्थ या प्रतिपाद्य उपलब्ध करती है। विषयवस्तु साधारण अर्थ में यदि कथ्य है तो यह बात जोड़ने के लिये रह जाती है कि उसमें घटना, विचार, संवेदना और सब घुले-मिले होते है। यह बात फिर विधा के अधीन है कि कहाँ कथ्य घटना तक सीमित होता है, कहाँ संवेदना का आधार ही प्रमुख होता है। हम 'ईदगाह' कहानी में देख चुके हैं कि घटना में संवेदना रची-बची है। वही संवेदना में रची-बसी घटना या घटना में रची-बसी संवेदना इस कहानी की विषयवस्तु को मूर्त रूप देती है।

रचना का प्रतिपाद्य ही विषयवस्तु का प्रतिपाद्य होता है। वस्तु विधान किया ही इस रूप में जाता है कि रचना अपना स्वभाविक तथा समग्र रूप और अर्थ प्राप्त कर सके। विषयवस्तु अपने अनुभव को ठीक तरह से पाठक तक पहुंचा सके। अस्पष्टता, दुर्बोद्धता रचना के दोष हैं- वे विषयवस्तु की ठीक-ठीक परिकल्पना न होने से उत्पन्न होते हैं।

विषयवस्तु से सीमित अर्थ नहीं लेना चाहिए। सीमित अर्थ लेने वाले रचनात्मक लेखक कुछ मोटे-मोटे सूत्र सिद्धांत बना लेते हैं, जिन्हें रचना में ढालना हो। विषयवस्तु का व्यापक अर्थ लेकर चलें तो हमें अपने आप से लिखने का अर्थ या प्रयोजन पूछना चाहिए। प्रश्न यदि अतिव्याप्त लगे तो सीमित अर्थ में पूछना चाहिए- हम कोई रचना विशेष ही क्यों लिखते हैं। एक दृष्टिकोण यह हो सकता है कि बंधे-बंधाए उद्देश्य से नहीं लिखते। यहीं यह खतरा हो सकता है कि निरुद्देश्य लेखन मानसिक शिथिलता या अराजक मुक्ति का पर्याय न बन जाय। इसीलिए कहा जा रहा है कि विषयवस्तु का अर्थ न बहुत सीमित है और न ही अनावश्यक रूप में फैला हुआ, असीमित व्यापक।

1.3.2.5.5 विषयवस्तु की पूर्वकल्पना

स्थूल रूप में न सही, सूक्ष्म रूप में ही सही, लिखी जा रही रचना की कोई पूर्वकल्पना मन में होनी चाहिए। यह पूर्वकल्पना भी अपने आप में पर्याप्त अनुशासित हो सकती है। इस पूर्वकल्पना में हम अनुभव, संवेदना, विचारधारा और कला के संश्लिष्ट विवेक का लाभ उठा सकते हैं। वहाँ हम समझकर चलें कि लिखा जाना ही काफी नहीं है- सार्थक लिखा जाना ही संतोष का विषय हो सकता है।

एक तरह से देखें तो विषयवस्तु का निर्धारण विषयवस्तु की पूर्वकल्पना ही है। आज जो संपूर्ण रचना में कहना चाहते हैं उसकी कोई ना कोई पूर्वकल्पना मन में हो यह स्वाभाविक है। वस्तुत: होता यह है कि ज्यों ही कोई विशेष दृश्य या अनुभव हमारे सामने इस तरह होता है कि हम उसे औसत से विशेष पाने लगे तो रचना क्या कहने जा रही है अर्थात् रचना में हम क्या कहने जा रहे हैं- इसकी एक कल्पना पहले ही सामने आने लगती है। कभी-कभी तो पूर्वकल्पना और रचना में बहुत अंतर ही नहीं होता है जैसे गीत में। एक दृश्य देखा, एक पंक्ति मन में कौंधी और गीत बन गया। यह पंक्ति ही कही बार विषयवस्तु (यदि गीत की अंतर्भावना को ही उसकी विषयवस्तु कहें, क्योंकि बहुत विस्तार या घटनाक्रम तो उसमें होता ही नहीं) की पूर्वकल्पना बनकर आती है। लेकिन मान लीजिए की आप उपन्यास लिखने की तैयारी कर रहे हैं या नाटक

लिखने की तैयारी कर रहे हैं तो पूर्वकल्पना मन में ही नहीं, काग़ज पर भी एक तरह तैयार का रूप ले सकती है। प्रेमचंद के उपन्यासों के लिखे जाने के पहले यह पूर्वकल्पना बहुत स्पष्ट तैयारी बनकर आती थी, यह तथ्य साहित्य के पाठकों के सामने आ चुका है।

इसीलिए विषयवस्तु की पूर्वकल्पना का स्वरूप उसकी सीमा, उसका औचित्य भी रचना की विधा या प्रकृति पर उसके रूप प्रकार पर निर्भर है। एक दायित्त्वपूर्ण लेखक विषयवस्तु की पूर्वकल्पना को अवश्य महत्त्व देता है। आप यदि रचना कर्म में लगे रहे हैं तो यह आपको जानना चाहिए कि आप क्या, क्यों, किस रूप में लिखने जा रहे हैं. यही विषयवस्तु की पूर्वकल्पना सार्थक जान पड़ेगी।

संक्षेप में हम कह सकते है कि रचना आरम्भ करने से पहले रचनाकार विषयवस्तु की पूर्वकल्पना करता है। लेकिन यह पूर्वकल्पना हू-ब-हू रचना में अभिव्यक्त नहीं होती। विषयवस्तु की जो भी कल्पना रचनाकार के मानस में आती है, उसमें और वास्तविक रचना में काफी फर्क होता है।

1.4 स्वयं अध्ययन के प्रश्न

अ) निम्नलिखित वाक्यों के नीचे दिए गए विकल्पों में से उचित विकल्प चुनकर वाक्य फिर से लिखिए।

1) कुछ नया अलग अनोखा करने की क्षमता .... कहलाती है।

क) नया ख) नयापन ग) सृजनात्मकता घ) सृजन

2) 'सृजनात्मकता' शब्द अंग्रेजी............. का हिंदी रूपांतरण है।

क) Creativity ख) Creaty ग) credit घ) Creatv

3) ''सृजनात्मकता मौलिक परिणामों को अभिव्यक्त करने की मानसिक प्रक्रिया है।'' यह परिभाषा .... की है।

क) क्रो एण्ड क्रो ख) एडलर ग) युंग घ) फ्रायड

4) मनोवैज्ञानिक टॉरेंस ने सृजनात्मकता के .... तत्त्व माने हैं।

क) दो ख) तीन ग) चार घ) पांच

5) सृजनात्मक लेखन के .... क्षेत्र है।

क) तीन ख) चार ग) पांच घ) छह

6) सर्जनात्मक लेखन का महत्त्व तभी है जब वह किसी-न-किसी रूप में समाज में .... परिवर्तन का साधन बने।

क) नकारात्मक ख) सकारात्मक ग) अड़तीस घ) छत्तीस

7) प्रसिद्ध साहित्यकार............ अपनी रचना-प्रक्रिया को तीन चरणों में रखते हैं।

क) राजीव ख) प्रेमचंद ग) संजीव घ) रांगेय राघव

8) रचना-प्रक्रिया .... वस्तु है जिस तक रचियता के आलावा किसी की पहुंच नहीं होती हैं।

क) नए प्रयास ख) वस्तुनिष्ठ ग) नयी विधा घ) आत्मनिष्ठ

9) ....का सिद्धांत पाश्चात्य काव्यशास्त्र की परंपरा का सबसे पुराना सिद्धांत माना जा सकता है।

क) अनुकरण ख) यथर्थवादी ग) दैवी प्रेरणा घ) धातु सिद्धांत

10) .... अंग्रेजी के रोमांटिसिज्म का हिंदी रूपांतर है।

क) कलावाद ख) 'स्वच्छंदतावाद' ग) यथार्थवाद घ) अनुकरणवाद

11) .... सिद्धांत का दूसरा योगदान है- 'अनुभूति पर बल देना।'

क) स्वच्छंदतावादी ख) यथार्थवादी ग) कलावादी घ) मनोविश्लेषणवादी

12) कला कला के लिए सिद्धांत .... सिद्धांत है।

क) स्वच्छंदतावादी ख) यथार्थवादी ग) कलावादी घ) मनोविश्लेषवादी

13) प्रसिद्ध यूनानी विचारक सुकरात के शिष्य, दार्शनिक और विचारवंत 'रिपब्लिक ग्रन्थ के लेखक प्लेटो .... सिद्धांत के प्रवर्तक रहे है।

क) कलावाद ख) 'स्वछंदतावाद' ग) यथार्थवाद घ) अनुकरण

ब. उचित मिलन कीजिए।

i)

सूची -1	सूची-2
1. अनुकरण का सिद्धांत	अ. बेनेडेटो क्रोचे
2. मनोवैज्ञानिक सिद्धांत	ब. श्रीधर पाठक
3. स्वच्छ्न्दतावाद	क. सिग्मंड फ्रायड
4. अभिव्यंजनावाद	ड. प्लेटो

A. 1- अ, 2- ब 3- क 4- ड

B. 1- ड 2- क 3- ब 4- अ

C. 1- ब 2- अ 3- ड 4- क

D. 1- क 2- ड 3- अ 4- ब

ii)

सूची -1	सूची-2
1. प्रतिभा	अ. नवोन्मेषकारी शक्ति
2. रूप	ब. वस्तु का आकार
3. विधा	क. साहित्य के वे भेद जिनके आधार पर रूपगत पहचान बनती है।

4. शिल्प ड. रचना का वह पक्ष जिससे उसके बाहरी रूप की पहचान हो।

A. 1- अ, 2- ब 3- क 4- ड

B. 1- ड 2- क 3- ब 4- अ

C. 1- ब 2- अ 3- ड 4- क

D. 1- क 2- ड 3- अ 4- ब

iii)

सूची -1	सूची-2
1. सृजनात्मक लेखन के क्षेत्र	अ. चार
2. रचना के कारण	ब. छह
3. टॉरेंस के मतानुसार सृजनात्मकता तत्व	क. तीन
4. रचना-प्रक्रिया के सिद्धांत	ड. दो

A. 1- अ, 2- ब 3- क 4- ड

B. 1- ड 2- क 3- ब 4- अ

C. 1- ब 2- अ 3- ड 4- क

D. 1- क 2- ड 3- अ 4- ब

क) सही गलत का निर्णय कीजिए।

1. नीचे दो कथन दिए गए है;

कथन 1- आत्माभिव्यक्ति रचना की पहली प्रक्रिया है।

कथन 2- रचना प्रक्रिया आत्मनिष्ठ वस्तु है जिस तक रचयिता के अलावा किसी की पहुँच नहीं होती है।

अ. कथन 1 और कथन 2 सही है।

ब. कथन 1 और कथन 2 गलत है।

क. कथन 1 सही है, लेकिन कथन 2 गलत है।

ड. कथन 1 गलत है, लेकिन कथन 2 सही है।

2. नीचे दो कथन दिए गए है;

कथन 1- कोई भी साहित्यकार सबसे पहले अपने सुख के लिए, अपने आनंद के लिए लिखता है।

कथन 2– रीतिकाल के कवि अर्थ की प्राप्ति के लिए रचना नहीं करते थे।

अ. कथन 1 और कथन 2 सही है।

ब. कथन 1 और कथन 2 गलत है।

क. कथन 1 सही है, लेकिन कथन 2 गलत है।

ड. कथन 1 गलत है, लेकिन कथन 2 सही है।

3. नीचे दो कथन दिए गए है;

कथन 1– रचना का प्रतिपाद्य ही विषयवस्तु का प्रतिपाद्य नहीं होता है।

कथन 2– विषयवस्तु का निर्धारण विषयवस्तु की पूर्वकल्पना ही है।

अ. कथन 1 और कथन 2 सही है।

ब. कथन 1 और कथन 2 गलत है।

क. कथन 1 सही है, लेकिन कथन 2 गलत है।

ड. कथन 1 गलत है, लेकिन कथन 2 सही है।

4. नीचे दो कथन दिए गए है;

कथन 1 यथार्थवादी सिद्धांत के अनुसार साहित्य सजग मानस व्यापर की उपज है।

कथन 2 कला कला के लिए सिद्धांत कलावादी सिद्धांत है।

अ. कथन 1 और कथन 2 सही है।

ब. कथन 1 और कथन 2 गलत है।

क. कथन 1 सही है, लेकिन कथन 2 गलत है।

ड. कथन 1 गलत है, लेकिन कथन 2 सही है।

1.5 पारिभाषिक शब्द, संदर्भ, टिप्पणियाँ

प्रतिभा : संस्कृत काव्यशास्त्र के अनुसार नवोन्मेषकारी शक्ति को प्रतिभा कहते है ।

रूप : वस्तु का आकार(सौन्दर्य)। यहाँ तात्पर्य कला के बाहरी रूप से है। जिससे उसकी विशिष्टता की पहचान होती है।

विधा : साहित्य के वे भेद जिनके आधार पर रूपगत पहचान बनती है।

शिल्प : रचना का वह पक्ष जिससे उसके बाहरी रूप की पहचान हो।

सृजनात्मकता : किसी वस्तु, विचार, कला, साहित्य से सम्बन्ध किसी समस्या का समाधान निकालने आदि के क्षेत्र में कुछ नया रचने, आविष्कृत करने या पुनर्सृजित करने की प्रक्रिया है।

स्वच्छंदतावाद : भावों की स्वच्छंद और उन्मुक्त अभिव्यक्ति, अंग्रेजी के रोमांटिसिज्म का हिंदी रूप है।

कलावाद : कलापक्ष पर विशेष बल देना, वस्तु के तुलना में कला को महत्त्वपूर्ण मानना तथा कला,कला के लिए सिद्धांत में विश्वास करना कलापक्ष है।

यथार्थवाद : साहित्य का एक महत्त्वपूर्ण सिद्धांत जिसके अनुसार जीवन के यथार्थ की अभिव्यक्ति ही साहित्य का लक्ष्य है।

अरस्तु : प्रसिद्ध दार्शनिक और विचारक, प्लेटो के शिष्य।

प्लेटो : रिपब्लिक ग्रन्थ के लेखक, प्रसिद्ध यूनानी विचारक सुकरात के शिष्य, दार्शनिक और विचारक।

वड्र्सवर्थ : अंग्रेजी के रोमांटिक धारा के प्रसिद्ध कवि, लिरिकल बैलेड के रचनाकार

बेनेडेटो क्रोचे : इटली क्र प्रसिद्ध दार्शनिक, अभिव्यंजनावाद सिद्धांत के प्रवर्तक।

सिगमंड फ्रायड : मनोविश्लेषणवाद के प्रवर्तक।

गृहीता : रचना का आस्वादन करने वाला अर्थात् पाठक, दर्शक या श्रोता।

सहज ज्ञान : अंग्रेजी शब्द Intitution का हिंदी अनुवाद है।

तादात्म्य : एक वस्तु का दूसरी में मिल जाना।

वृत्ति : स्वभाव, चेष्टा, प्रकृति।

अस्मिता : पहचान

1.6 स्वयं अध्ययन के प्रश्नों के उत्तर

उत्तर : 1)

1. ग) सृजनात्मकता, 2. क) Creativity, 3. क) क्रो एण्ड क्रो,

4. ग) चार 5. क) तीन, 6. ख) सकारात्मक,

7. ग) संजीव, 8. घ) आत्मनिष्ठ, 9. ग) दैवी-प्रेरणा,

10. ख) स्वच्छंदतावाद, 11. क) स्वच्छंदतावादी 12. ग) कलावादी,

13. घ) अनुकरण।

2) 1. B, 2. A, 3. D,

3) 1.अ, 2.क, 3. ड, 4. अ

1.7 सारांश

सृजनात्मकता किसी वस्तु, विचार, कला, साहित्य से सम्बन्ध किसी समस्या का समाधान निकालने आदि के क्षेत्र में कुछ नया रचने, आविष्कृत करने या पुनर्सृजित करने की प्रक्रिया है। यह एक मानसिक संक्रिया है जो भौतिक परिवर्तनों को जन्म देती है। सृजनात्म्कता के संदर्भ में वैयक्तिक क्षमता और प्रशिक्षण का आनुपातिक समबन्ध है। सृजनात्मकता लेखन से अलग कोई तत्व नहीं है न ही कोई दैवीय वरदान नहीं है। लेखन के प्रति आपकी गंभीरता, शिल्प पक्ष का ज्ञान, निरंतर अभ्यास और नया कुछ रचने की गहरी ललक ही सृजनात्मकता है, जो रचना के रूप में अभिव्यक्त करती है। निश्चित ही लेखन पर बाहरी दबावों का प्रभाव पडता है। लेकिन ये प्रभाव सकारात्मक और नकारात्मक दोनों तरह के होते है। मुख्य बात यही है कि रचना के लिए रचनाकार ने कितना तैयार किया है।

रचना-प्रक्रिया हर लेखक की अलग-अलग होती है। यह इस बात पर निर्भर करता है कि रचनाकार जो लिखना चाहता है उसके लिए किस विधा का चुनाव करता है। रचनाकार जब अपने अनुभवों की कला के किसी खास रूप-विधान को जिस प्रक्रिया में अभिव्यक्त करता है, उसे ही रचना-प्रक्रिया कहते है।

रचना-प्रक्रिया के सम्बन्ध में कई सिद्धांत प्रचलित हैं। रचना की क्षमता ईश्वर की प्रेरणा से आने वाली दैवी प्रेरणा का सिद्धांत हुआ, वास्तविक अनुभव के अनुकरण पर सृजन की कला अनुकरण सिद्धांत है, तीव्र भावनाओं की स्वतःस्फूर्त अभिव्यक्ति की कला स्वच्छंदतावादी सिद्धांत है, केवल आनंद और सौंदर्य दृष्टि के निहितार्थ रचना कलावादी सिद्धांत के रूप में हुई, मनुष्य की दमित भावनाओं की अभिव्यक्ति देने वाली रचना मनोवैज्ञानिक सिद्धांत के अनुसार हुई, और जिस रचना में जीवन के यथार्थ को अभिव्यक्ति मिली, वह यथार्थवादी सिद्धांत के तहत हुआ।

लेखक मूलत: तीन कारणों से प्रेरित होकर लिखते हैं- केवल अपने सुख के लिए, धन या यश पाने के लिए और सामाजिक परिवर्तन के लिए। लेखक के लेखन के पीछे इनमें से कोई एक उद्देश्य मुख्य प्रेरणा के रूप में मौजूद रहता है यद्यपि अन्य उद्देश्य भी रचना से पूरे हो सकते है। लेखक के मन में यह बात भी हो सकती है कि किसके लिए लिख रहा है यानी उसका पाठक कौन है। जैसा उसका पाठक होगा रचना भी कुछ वैसी होती है। मतलब लेखक रचना से मनोरंजन करना चाहता है, धन कमाना चाहता है। यश कमाना चाहता है। सामाजिक परिवर्तन करना चाहता है या सिर्फ रचना करके लेखन का सुख चाहता है। लेखक रचना से जो चाहता है, रचना का स्वरुप भी वैसा ही बनता है।

रचना आरम्भ करने से पहले रचनाकार विषयवस्तु की पूर्वकल्पना करता है। लेकिन यह पूर्वकल्पना हू-ब-हू रचना में अभिव्यक्त नहीं होती। विषयवस्तु की जो भी कल्पना रचनाकार के मानस में आती है, उसमें और वास्तविक रचना में काफी फर्क होता है।

1.8 स्वाध्याय

अ) लघु उत्तरीय प्रश्न

1. सृजनात्मकता के विविध रूपों को स्पष्ट कीजिए।
2. सृजनात्मकता के महत्त्व को स्पष्ट कीजिए।
3. रचना प्रक्रिया से क्या तात्पर्य हैं।
4. रचना के कारण बताइए।
5. विषयवस्तु से क्या आशय है?
6. विषयवस्तु के निर्धारण से क्या तात्पर्य है?
7. विषयवस्तु- निर्धारण में कौन-कौनसी समस्याएँ हैं?

आ) दीर्घोत्तरी प्रश्न

1. सृजनात्मकता की जानकारी देते हुए उसके महत्त्व को स्पष्ट कीजिए।
2. रचना-प्रक्रिया के विभिन्न सिद्धांतों की जानकारी दीजिए।
3. रचना के उद्देश्य को विस्तार से लिखिए।

1.9 क्षेत्रीय कार्य

1. किसी अधूरी कहानी को अपनी सृजनात्मकता से पूरा कीजिए।
2. एक लेखक के रूप में आप अपनी रचनात्मक प्रतिक्रिया को लिखिए।
3. किसी कविता या कहानी को पढ़कर आप भी दूसरी कहानी या कविता लिखने का प्रयास कीजिए।
4. किसी प्रसिद्ध रचनाकार की रचना की विषयवस्तु की पूर्वकल्पना के बारे में विस्तार से लिखिए।

1.10 अतिरिक्त अध्ययन के लिए

1. रचनात्मक लेख- रमेश गौतम, ज्ञानपीठ प्रकाशन, दिल्ली।
2. सृजन- 1   एन.सी.ई. आर.टी. की पाठ्यपुस्तक।
3. रचना-प्रक्रिया से जूझते हुए- लीलाधर जगूड़ी, वाणी प्रकाशन, दिल्ली।
4. साहित्य के समाजशास्त्र की भूमिका- मैनेजर पाण्डेय, हरियाणा ग्रन्थ अकादेमी, पंचकुला।
5. कला के जोखिम- निर्मल वर्मा, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली।
6. सृजनात्मक लेखन   महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा।

❑❑❑

इकाई -2
सृजनात्मक लेखन और नवाचार

अनुक्रम -

2.1 उद्देश्य

2.2 प्रस्तावना

2.3 विषय विवेचन

2.3.1 समकालीन पॉपुलर साहित्य : परिचय एवं प्रकार

2.3.2 लप्रेक एवं यूनी कवि : परिचय एवं वैशिष्ट्य

2.3.3 गैर कथात्मक लेखन (संस्मरण, जीवनी, आत्मकथा)

2.3.4 साहित्य में नवाचार (रिपोर्ताज, डायरी, साक्षात्कार)

2.4 स्वयं अध्ययन के प्रश्न

2.5 पारिभाषिक शब्द, शब्दार्थ

2.6 स्वयं अध्ययन के प्रश्नों के उत्तर

2.7 सारांश

2.8 स्वाध्याय

2.9 क्षेत्रीय कार्य

2.10 अतिरिक्त अध्ययन

2.1 उद्देश्य:

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप-

1. पॉपुलर साहित्य एवं प्रकार से परिचित होंगे।
2. लप्रेक का अर्थ, लप्रेक त्रयी के परिचय के साथ उनकी विशेषताओं को जान सकेंगे।
3. यूनी कविता का अर्थ और महत्वपूर्ण यूनी कवियों के बारें में जानकारी के साथ उनकी भी विशेषताओं को जान सकेंगे।
4. हिंदी साहित्य में गैर कथात्मक लेखन की विस्तृत जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
5. साहित्य में नवाचारों से परिचित हो सकेंगे।

2.2 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई में हम सृजनात्मक लेखन और नवाचार की जानकारी प्राप्त करेंगे। जिसमें से पॉपुलर साहित्य का आशय इंटरनेट पर उपलब्ध साहित्य से है। इंटरनेटीय साहित्य भले ही कितना भी पॉपुलर क्यों न हो, वह गैर-गंभीर होता है। इसी मिथक को तोड़ने का प्रयास करता है- हिंदी सृजनात्मक लेखन में नवाचार। सृजनात्मक लेखन में नवाचार लगातार इंटरनेट पर गंभीरता के साथ उपस्थिति दर्ज करता जा रहा है। इस इकाई में हम लप्रेक एवं यूनी कविताओं के परिचय और उनकी विशेषताओं की जानकारी प्राप्त करेंगे।

आमतौर पर साहित्य का अर्थ कहानी, उपन्यास, कविता या नाटक लेखन आदि से लगाया जाता है लेकिन वर्तमान में साहित्य के विविध रूप पाठकों के समक्ष आ रहे हैं। आज जितनी तेजी से समय बदल रहा है उसी गति के साथ प्रत्येक क्षेत्र में बदलाव नजर आ रहे हैं और यही कारण है कि साहित्य के भी अलग-अलग रूप दिख रहे हैं। यद्यपि गैर कथात्मक साहित्य आज की देन नहीं है यह पिछले काफी समय से लिखा जाता रहा है लेकिन वर्तमान में अन्य विधाओं को एक स्पष्ट पहचान मिली है। मनुष्य की सृजनशीलता ने अभिव्यक्ति के नये-नये माध्यम खोजे और परंपरागत ढंग से चले आ रहे साहित्य लेखन को एक नया रूप देने के साथ ही एक नया बड़ा आकाश भी दिया। लेखक की अभिव्यक्ति नई-नई विधाओं के रूप में प्रस्फुटित हुई, जिसे हम नवाचार के रूप से जानते हैं। इन नवीन विधाओं के माध्यम से लेखक ने जीवन अनुभव, उसके ज्ञात और विभिन्न धारणाओं से पाठक परिचित हुआ। इस इकाई में गैर कथात्मक लेखन एवं नवाचार को केंद्र में रखते हुए नवीन विधाओं का परिचय देने का प्रयास किया गया है।

2.3 विषय विवेचन

2.3.1 समकालीन पॉपुलर साहित्य : परिचय एवं प्रकार

2.3.1.1 प्रस्तावना

'पॉपुलर' साहित्य का अर्थ उस पॉपुलैरिटी से नहीं, जिस अर्थ में कोई कलाकार या खिलाड़ी पॉपुलर होता है। पॉपुलर कल्चर से तात्पर्य ऐसी संस्कृति से होता है जो उच्च सम्प्रभु संस्कृति के विपरीत होती है। इस अर्थ में शास्त्रीय संगीत, चित्रकला, शास्त्रीय नृत्य आदि उच्च कला के रूप हैं। इसके विपरीत फिल्म-संगीत, रॉक संगीत, सिनेमा आदि लोकप्रिय कला या संस्कृति के मानक कहे जा सकते हैं। जिसे उच्च कला कहते है, उसमें माना जाता है कि उसका एक शास्त्र होता है, व्याकरण होता है और उसे बिना समझे बिना उसका आनंद नहीं लिया जा सकता। आपको अगर भारतीय रागों की समझ नहीं है तो आप शास्त्रीय संगीत का आनंद नहीं उठा सकते। कौन-सा राग किस समय गाया जाता है? शास्त्रीय संगीत में घरानों का क्या महत्त्व है? आलाप क्या होता है और अंतरा क्या होता है? इन सबकी अगर आपको जानकारी नहीं है तो आप शास्त्रीय संगीत के रसिक नहीं हो सकते। शास्त्रीय संगीत रसिकों के लिए होता है। उनमें एक तरह

का सामंती भाव होता है। सब कुछ बड़ा करीने से होता है। शास्त्रीय संगीत बड़ी तहजीब की चीज समझी जाती है। उसका आनंद उठाने के लिए आपको उसकी संस्कृति का भी पूरा ज्ञान हो। इसके ठीक विपरीत पॉपुलर संगीत या कला की सबसे बड़ी विशेषता होती है कि उसे अलग से नहीं बताना पडता है कि यह कला है। उसे आमतौर पर आदमी अपनी संवेदना से स्तर पर जीने लगता है। फिल्मी गीतों के प्रभाव को इसी रूप में लिया जाता है।

लेकिन यहाँ हमें पॉपुलर साहित्य का आशय इंटरनेट पर उपलब्ध साहित्य से है। इंटरनेटीय साहित्य भले ही कितना भी पॉपुलर क्यों न हो, वह गैर-गंभीर होता है। इसी मिथक को तोड़ने का प्रयास करता है- हिंदी सृजनात्मक लेखन में नवाचार। सृजनात्मक लेखन में नवाचार लगातार इंटरनेट पर गंभीरता के साथ उपस्थिति दर्ज करता जा रहा है।

2.3.1.2 पॉपुलर का अर्थ

'पॉपुलर' शब्द का अर्थ अंग्रेजी शब्दकोश के अनुसार- प्रिय, जनप्रिय, लोकप्रचलित, लोकप्रिय, सार्वजनिक, सस्ता, सुलभ तथा सर्वप्रिय आदि है। पहले हम हिंदी में प्रचलित 'लोकप्रिय' शब्द के बारे में जानकारी प्राप्त करते है। दरअसल 'लोकप्रिय' शब्द का सीधा-सा अर्थ है- 'जो लोक को प्रिय हो'। लेकिन लोक कौन? क्या यह लोक अंग्रेजी का फ़ोक है, जिसका मतलब सामान्य जन से होता है और कभी-कभी इसे आदिम और देहाती भी समझा जाता है। साधारण अर्थ में लोक में सभी शामिल हो जाते हैं। लेकिन विशेष अर्थ में हम जानते हैं कि यह 'विशेष' से अलग होता है। कला के क्षेत्र में हम लोक और शास्त्रीय का विभाजन देखते हैं, जिसमें शास्त्रीय का मतलब ही परिष्कृत और व्याकरणिक होता है जबकि लोक का मतलब अनगढ़ होता है। जैसा कि अंग्रेजी में 'लोकप्रिय' शब्द का पर्यायवाची 'पॉपुलर' है। पॉपुलर अच्छी तरह से पसंद किये जाने की सामाजिक स्थिति है जिसका प्रसार व्यापक होता है। यानी जनसामान्य द्वारा अच्छी तरह से जानी गई और अच्छी तरह से पसंद की चीज पॉपुलर होती है। इसी पॉपुलर से पॉपुलर संस्कृति की अवधारणा का विकास हुआ है। पॉपुलर कल्चर दो अर्थो को धारण करता है। पहिला, जो इसे दोयम दर्जे का मानता है और दूसरे अर्थ में इसे व्यापक पसंत किया जाने वाला समझा जाता है। लेकिन अधिकांशत: पॉपुलर कल्चर का मतलब ही कमतर समझ लिया जाता है और इस पॉपुलर कल्चर में आने वाली हर निर्मिति जैसे सिनेमा, संगीत, साहित्य, क्रिकेट इत्यादि दोयम दर्जे का मान लिया जाता है। संस्कृति अध्ययन नाम के अनुशासन ने पॉपुलर संस्कृति के अध्ययन का रास्ता खोल दिया है अन्यथा विद्वज्जनों के लिए यह वर्जित क्षेत्र था। इसके अध्ययन की तरफ ध्यान नहीं दिया जाता था। बावजूद इसके कि यह हमारे दैनंदिन जीवन के निर्मित हो रहे इतिहास के अध्ययन में सहाय्यक है।

2.3.1.3 पॉपुलर साहित्य का स्वरूप : एक परिचय

जो साहित्य या कला व्यापक जनसमुदाय के बीच सहज रूप में ग्राह्य और स्वीकार्य हो वह पॉपुलर (लोकप्रिय) साहित्य है। सरलता, सहजता और सुबोधता आदि ऐसे साहित्य के गुण हैं। व्यापक जनसमुदाय के बीच कोई साहित्य केवल सरलता और सुबोधता के कारण लोकप्रिय नहीं होता है। लोकप्रियता कला

या साहित्य के रूप की ही विशेषता नहीं है। वही साहित्य व्यापक जनता में लोकप्रिय होता है जिसमें जन-जीवन की वास्तविकताएँ और आकांक्षाएं सहज-सुबोध रूप में व्यक्त होती है। इसलिए लोकप्रियता का संबंध साहित्य के रूप के साथ-साथ उसकी अंतवस्तु में मौजूद यथार्थ-चेतना में निहित विश्वदृष्टि से भी होता है। केवल रूप संबंधी लोकप्रियता सतही होती है और रचना को भी सतही बनाती है।

2.3.1.4 लोकसाहित्य और लोकप्रिय साहित्य में अंतर

'लोकसाहित्य' और 'लोकप्रिय साहित्य' में पहला अंतर 'लोकसाहित्य' गणसमाज के द्वारा आज तक किसी न किसी रूप में निर्मित और विकसित होता आ रहा है जबकि लोकप्रिय साहित्य पूँजीवादी युग और समाज की उपज है। लोकसाहित्य और लोकप्रिय साहित्य में दूसरा अंतर है कि लोकसाहित्य की रचना जनसमुदाय करता है और वही उसका श्रोता भी है अर्थात् लोकसाहित्य जनता का, जनता द्वारा, जनता के लिए रचित साहित्य है आज का लोकप्रिय साहित्य प्रकाशन की युग का साहित्य है जिसका बड़े पैमाने पर व्यवसायिक उत्पादन होता है। वह पूँजीवादी उत्पादन प्रणाली की दूसरी वस्तुओं की तरह उत्पादित होकर बाजार के माध्यम से खरीद-विक्री की वस्तु की तरह जनता तक पहुंचता है। ऐसा लोकप्रिय साहित्य केवल लोकसाहित्य से ही भिन्न नहीं होता वह जनसाहित्य से भी भिन्न होता है क्योंकि जनसाहित्य जनता द्वारा रचित भले ही न हो, लेकिन उसे जनता की भावनाओं से एकता अनुभव करने वाले लेखक रचते हैं। जबकि पूँजीवादी युग का साहित्य आर्थिक उद्देश्य से लिखा गया और व्यावसायिक लाभ के लिए प्रकाशित साहित्य है जिसका मूल्य बाजार में तय है। प्रकारांतर से यह बाजार के नियमों से उत्पादित और संचालित साहित्य है। यही कारण है कि इस लोकप्रिय साहित्य के उत्पादन, विनिमय, वितरण और उपभोग की पूरी व्यवस्था को अडोर्नो ने संस्कृति का उद्योग कहा है और वोरदिये ने उसे प्रतीकात्मक वस्तुओं का बाजार कहा है।

2.3.1.5 हिंदी में लोकप्रिय साहित्य की शुरुआत

हिंदी के उन रचनाकारों का उदाहरण हमारे सामने है जिनकी 'लोकप्रियता' ने आलोचना के अभिजात्य से उनको लगभग बाहर करवा दिया। लेकिन उपन्यास का मसला अलग है। उपन्यास दरअसल लोकप्रिय विधा के रूप में ही सामने आया। उपन्यास का इतिहास ही बताता है कि छापखाने के आविष्कार के बाद इस विधा का आगमन हुआ और निरंतर इसकी पठनीयता बढ़ी। भारत में भी उपन्यास का आगमन जिन परिस्थितियों में हुआ वह युरोप से भिन्न थी। न यहाँ पूँजीवाद, ना ही मध्यमवर्ग का उदय हुआ था और न ही यहाँ के दर्शन में यथार्थवाद और व्यक्तिवाद था। लेकिन यहाँ आख्यायिका की परंपरा थी, दास्तान थी, बाणभट्ट की कादंबरी और कथासरितसागर भी था। छापखाने के आविष्कार के बाद छपने वाले साहित्य के रूप में 'सिंहासन बत्तीसी', 'बेताल पचीसी', 'किस्सा तोता-मैना' इत्यादि भी था जो अपने पाठक तैयार कर रहा था।

हिंदी में उपन्यास की परंपरा का विकास किस्सों और दास्तानों की परंपरा से हुआ है। यद्यपि संरचना और शिल्प पश्चिम से लिये गये थे लेकिन अन्य कला माध्यमों की तरह ये भारतीय परंपरा से जुड़ गये।

किस्सा और दास्तान बहुत ही लोकप्रिय माध्यम था। दास्तानों की बैठकें रातभर जमती थीं। हिंदी उपन्यास का विकास इन किस्सों और दास्तानों की इसी परंपरा की अगली कड़ी थी। देवकीनंदन खत्री के उपन्यास इसका उदाहरण है। मुंशी प्रेमचंद ने भी अपने लेखन में दास्तानों की परंपरा का दाय स्वीकार किया है। देवकीनंदन खत्री के उपन्यास अत्यंत लोकप्रिय हुए। उनका पहला ही उपन्यास 'चंद्रकांता' इतना लोकप्रिय हुआ कि उसकी कड़ी दर कड़ी निकलती गई और जैसा कि सर्वविदित है कि 'चंद्रकांता' पढ़ने के लिए लोगों ने हिंदी सीखी। इस तरह आरंभ में ही उपन्यास में लोकप्रिय और साहित्यिक दो श्रेणी विभाजन हो गया। उसी प्रकार जैसा कि आधुनिक युग के आरंभ में ही भारतेंदु और उनके समकालीनों ने 'आर्य शिष्ट जनोपयोगी' के नाम पर पारसी नाटकों को हेय दृष्टि से देखा और साहित्यिक रंगमंच की स्थापना की कोशिश की। वस्तुत: ऐसा सभी कला रूपों के साथ हुआ, जिसमें आधुनिकता, राष्ट्रीयता और समाजसुधार के लिए उपयोगी रचनाओं को महत्त्व दिया गया और इससे इतर को हतोत्साहीत किया गया। लेकिन जिन कलारूपों में यह उद्देश्य पूरा होता था उनको भी दरकिनार कर दिया गया क्योंकि वे आधुनिकता के मापदंडों पर खरी नही थी। आभिजात्य आलोचना ने कला को मर्यादित और अनुशासित रखने के लिए 'साहित्यिक' कहे जाने की विशेष कोटि निर्मित कर दी थी। वस्तुत: आभिजात्य और लोकप्रिय का यह विभाजन आधुनिकता की ही देन है। आधुनिकता से विकसित चेतना ने जो पिछडेपन का बोध कराया उसमें परंपरा की बहुत-सी चीजें शामिल थी जिससे लगाव आधुनिकता के मार्ग में बाधक होता। अत: आधुनिकता के प्रसार के साथ ही हर क्षेत्र में ऐसी कृतियों की रचना हुई जो आधुनिक मूल्यों की वाहक बन सकें। साहित्य भी इसे अछूता कैसे रह सकता है।

जैसा कि उपर कहा गया कि कथा साहित्य का विकास ही लोकप्रिय किस्सों और कहानियों के क्रम में हुआ था। लेकिन आरंभिक उपन्यासकारों के सामने अंग्रेजी उपन्यास थे जिनका अनुसरण कर वे उपन्यास की संरचना को अंग्रेजी उपन्यासों के नजदीक रखने लगे। जिस यथार्थवाद और व्यक्तिवाद का वे अनुसरण कर रहे थे वैसा यथार्थवाद यहाँ कि जनता में न था इसलिये उसी दौर में फैंटसी रचने वाली कहानियाँ और ऐतिहासिक उपन्यास आए। वह जनता में बहुत लोकप्रिय हुए। साक्षरता के विकास के साथ साथ पाठक संख्या बढ़ती गयी और उपन्यास जनसामान्य में जगह बनाती गई। 'चंद्रकांता' की लोकप्रियता का जिक्र हो ही चुका है जिसने हिंदी उपन्यास हिंदी भाषा को स्थापित किया। 'चंद्रकांता' के बाद जासूसी उपन्यासों और तिलिस्मी उपन्यासों के लेखन का एक पूरा इतिहास मौजूद है।

प्रेमचंद के आगमन ने कथा साहित्य को एक नया मोड़ दिया। प्रेमचंद भी अत्यंत लोकप्रिय उपन्यासकार थे लेकिन उन्होंने अपने लेखन को मनोरंजन से उपर उठाकर कुछ मूल्यपरक भी बनाया उन्होंने 'हुस्न का मेयार' बदलने की सिर्फ बात ही नही की उसे बदला भी। प्रेमचंद के समान है अन्य उपन्यासकारों की लोकप्रियता के तत्वों को शामिल करना पड़ेगा। देवकीनंदन खत्री और किशोरीलाल गोस्वामी न हुए होते तो प्रेमचंद को वही काम करना पड़ता जो उन दोनों ने किया था।

हिंदी में लोकप्रिय साहित्य कहने से अक्सर हमारा ध्यान लुगदी उपन्यासों और फुटपाथी साहित्य पर चला जाता है और फिर अध्ययन के केन्द्रों से उसे बाहर कर दिया जाता है। सारा का सारा ध्यान गंभीर

साहित्य पर ही रहता है। यह भुलाकर कि गंभीर साहित्य भी लोकप्रिय हो सकता है या लोकप्रियता मूल्यों के ह्रास का बोधक नहीं है या तथाकथित लोकप्रिय साहित्य के भी कुछ मूल्य हो सकते हैं जिनका अध्ययन कर समय और समाज को समझा जा सकता है। यह कुछ नहीं करते तो कम से कम अध्ययनशीलता की प्रवृत्ति तो बढ़ाते ही हैं। अधिकांश लेखक भी यह स्वीकार करते हैं कि उनके पढ़ने की आदत के पीछे ऐसे साहित्य की अध्ययन की बड़ी भूमिका रही है। लोकप्रिय लेखन और साहित्यिक लेखन का भी विभाजन यह कि 'लोकप्रिय' लेखन का उद्देश्य होता है कि पाठक की संवेदना को सहला कर उसका मनोरंजन करना जबकि साहित्यिक लेखन का उद्देश्य आत्माभिव्यक्ति होती है जो संवेदना के साथ-साथ सोच पर भी असर करता है और किसी प्रकार का पलायन नहीं रचता हैं। साहित्यिकता की कोटी भी समय अनुसार बदलती रहती है। एक समय में साहित्यिक समझी गई कृतियाँ भविष्य में असाहित्यिक हो सकती हैं और इसी प्रकार लोकप्रिय समझी गई कृतियाँ साहित्यिक दर्जा पा सकती हैं। ऊपर हमने पाठकों की बात की। हर किस्म के लेखन के अलग पाठक होते हैं। कोई भी रचना शून्य में नहीं होती पाठक उसे चाहिये ही। लोकप्रियता का पैमाना पाठक ही है। अगर गंभीर लेखक को पाठक ना मिले तो? या जिन्हें हम गंभीर लेखक मानते हैं क्या उनकी पाठक संख्या या लोकप्रियता कम रही है। प्रेमचंद और शरतचंद्र के पाठकों की संख्या किसी 'लोकप्रिय' लेखक से कम रही है! यानी लोकप्रियता और साहित्यिकता कोई दो विपरीत धृव नहीं हैं। लोकप्रिय कृति भी साहित्यिक हो सकती है और उसी प्रकार साहित्यिक कृति भी लोकप्रिय।

2.3.1.6 समकालीन पॉपुलर साहित्य

आज समकालीन हिंदी पॉपुलर साहित्य के क्षेत्र में विस्तार हुआ है। पिछले कुछेक सालों में 'सोशल मीडिया', विशेषकर 'फेसबुक' को लेकर दो तरह के विचार सक्रिय हैं- एक तरफ ऐसे लोग है जिनका यह मानना हैं कि हिंदी की रचनात्मकता का क्षरण हो रहा है। जबकि दूसरी तरफ ऐसे लोग हैं कि जो मानते हैं कि सोशल मीडिया के कारण हिंदी का व्यापक विस्तार हुआ है। इसका दायरा पहले से विस्तृत हो रहा है, वह हिंदी विभागों से बाहर फैल रही है। इंजीनियरिंग, मैनेजमेंट आदि विविध तबकों से जुड़े लोक न सिर्फ हिंदी में साहित्य लिख रहे हैं बल्कि उसका अपना पाठक वर्ग भी बनता जा रहा है।

आज हम देखते है कि एक बहुत बडा बदलाव आया है जो सोशल मीडिया के जरिये हिंदी लेखन के परिदृश्य पर घटित होता दिखाई दे रहा है। वह बदलाव हिंदी के लोकप्रिय लेखकों-पाठकों की दुनिया में हो रहा है। लंबे समय तक हिंदी में लोकप्रिय लेखन के नाम पर, लोकप्रिय साहित्य के नाम पर सुरेंद्र मोहन पाठक, वेद प्रकाश शर्मा के जासूसी उपन्यासों को ही मानक माना जाता था। आज सोशल मीडिया, ऑनलाइन माध्यमों से होने वाली किताबों की बिक्री के कारण यह स्थिति बन गई है कि हिंदी के जासूसी उपन्यास लेखक हिंदी के लोकप्रिय साहित्य के प्रतिनिधि लेखक नहीं रह गए हैं। सोशल मीडिया हिंदी में किताबों को लोकप्रिय बनाने वाले माध्यम के रूप में ही नही बल्कि हिंदी साहित्य के सृजन में भी नए ढंग से महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा रहे है। उदाहरण के लिए, राजकमल प्रकाशन के उपक्रम 'सार्थक बुक्स' ने लप्रेक सीरीज की शुरुआत की, जिसकी पहली किताब पत्रकार रवीश कुमार की थी 'इश्क में शहर होना'

अपनी लोकप्रियता के मामले में इस किताब ने एक छाप तो छोड़ी ही है। बाद में इस शृंखला में दो और किताबें आयी हैं। लप्रेक विधा की खासियत यह है कि ये मूल रूप से फेसबुक स्टेटस के रूप में लिखी गई है। इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता है कि फेसबुक ने हिंदी के लेखकों को इस बात की तमीज दी है कि कम शब्दों में किस तरह से मानीखेज बात लिखी जा सकती है, ऐसी बात जो कि ज्यादातर लोगों को अपने दिल की बात-सी लगे। इसने इस मिथक को तोड़ दिया है कि हिंदी में पॉपुलर का मतलब महज रुमानी या फंतासी साहित्य नहीं होता है।

हिंदी का यह नया बनता लेखक वर्ग है जो हिंदी के पॉपुलर साहित्य को नई पहचान और दिशा दे रहा है। इस क्रम में युग्म प्रकाशन भी हिंदी में नये ढंग से पॉपुलर साहित्य की लोकप्रियता में योगदान दे रहा है। हिंदी युग्म प्रकाशन ने हाल के वर्षो में निखिल सचान की 'नमक स्वादानुसार', दिव्य प्रकाश दुबे की 'मसाला चाय', अनुसिंह चौधरी की 'नीला स्कार्फ', आशीष चौधरी की 'कुल्फी एंड कैपुचिनो', सत्या व्यास की 'बनारस टॉकीज' जैसी कुछ ऐसी किताबों को प्रकाशित किया है, जिन्होंने फेसबुक जैसे सोशल मीडिया साइट्स के प्रचार के सहारे और ऑनलाईन विक्री के आधार पर हिंदी के पॉपुलर साहित्य को एक नया आयाम दिया है। इन उदाहरणों से एक बात साफ है कि हिंदी के पॉपुलर साहित्य की दुनिया सोशल मीडिया के प्रभाव में बदल रही है। सोशल मीडिया ने लेखकों को पाठकों से जोड़ने में ही महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है और उसकी वजह से लेखक प्रकाशक से भी जुड़ने लगे है।

पॉपुलर साहित्य के प्रसार में सोशल मीडिया की भूमिका अभी निर्णायक है। अगर सोशल मीडिया को हमारे समय से घटा कर देखें तो और कोई ऐसा प्रभावी जरिया नहीं है, जिससे टारगेट रीडर तक कोई भी पब्लिशर या लेखक अपनी किसी बात को इतनी आसानी से पहुँचा सकता हो। दरअसल सोशल मीडिया लोकप्रिय साहित्य के प्रसार के लिए एक तरह का 360 डिग्री सोल्यूशन है। फेसबुक माध्यम की कई विशेषताएँ और सुविधाएँ हैं, जिनका लेखक प्रकाशक बड़ी होशियारी से इस्तेमाल कर रहे हैं। सबसे बड़ी सुविधा है कि यह माध्यम नि:शुल्क सुविधा प्रदान करता है। दूसरे, इस माध्यम के उपयोग द्वारा ऑडिओ, वीडियो सभी प्रकार की सुविधाओं से आकर्षित किया जा सकता है। पाठकों के लिए किताब के अंश दिए जा सकते हैं, उनके साथ किताबों के कवर साझा किये जा सकते हैं, किताबों के फेसबुक पेज बनाकर उससे भी लोगों को जोड़ा जा सकता है। जब लप्रेक शृंखला की किताबों का प्रकाशन शुरू किया गया तो उसका एक फेसबुक पेज भी बनाया और आज उस पेज से पांच हजार से अधिक लोग जुड़े हुए हैं। यह एक जीवंत माध्यम है, जिसमें हर प्रक्रिया में पाठकों की भूमिका रहती है। यानी एक प्रॉडक्ट के रूप में किताब के तैयार होने में पाठकों को भी शामिल हो जाता है और वह धीरे-धीरे खुद को उस किताब का हिस्सा समझने लगता है। पाठकों की पुस्तकों के साथ इस तरह की संलग्नता पहले संभव नहीं थी।

लेकिन यहीं पर एक सवाल भी उठता है जो बड़ा गंभीर है कि क्या साहित्य को किसी कमोडिटी के रूप में बेचा जाना चाहिए? क्या सोशल मीडिया के माध्यम से होने वाले अत्याधिक प्रचार-प्रसार के कारण साहित्य को लेकर अच्छे-बुरे का विवेक मिटता जा रहा है? क्या पॉपुलरिटी ही साहित्य का नया मूल्य है? हिंदी के संबंध में ये सवाल गंभीर हैं क्योंकि एक ऐसी भाषा है जिससे निरंतर बड़ी तदाद में पाठक रोज जुड़

रहे हैं। लेकिन जिस तरह से सोशल मीडिया के माध्यम से साहित्य को प्रस्तुत किया जा रहा है, जिस तरह से उसको विज्ञापित किया जा रहा है उससे श्रेष्ठ और लोकप्रिय के मानक आपस में घुलते-मिलते जा रहे हैं। सोशल मीडिया के कारण जो बडा प्रभाव किताबों की दुनिया पर, हिंदी साहित्य के परिसर पर पड़ता दिखाई दे रहा है वह यह है बिकना ही सबसे बड़े पैमाने के रूप में स्थापित होता जा रहा है।

इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता है कि सोशल मीडिया के कारण हिंदी हिंदी-विभागों से निकलकर फ़ैल रही है। लिटरेचर फेस्टिवल से लेकर अंग्रेजी मीडिया में लगातार हिंदी की लोकप्रिय पुस्तकों को लेकर स्पेस बढ़ता जा रहा है। उसका परिसर तो बढ़ता जा रहा है लेकिन केंद्र कहीं न कहीं सिमटता जा रहा है। जो माध्यम हिंदी की लोकप्रिय पुस्तकों को लेकर बढ़-चढ़ कर जगह बना रहे हैं वे माध्यम हिंदी एक गंभीर साहित्य को लेकर किसी तरह के उपक्रम करने को लेकर उदासीन हैं। लेकिन इस चिंता के बावजूद यह तथ्य बेमानी नहीं हो जाता है कि सोशल मीडिया के फेसबुक जैसे माध्यम हिंदी में एक नये परिसर का निर्माण कर रहे हैं और अब धीरे-धीरे उसकी अपनी व्यवस्था भी बनती जा रही है। आज हिंदी के लेखक सबसे बड़ी तादाद में इस माध्यम द्वारा संवाद स्थापित कर रहे हैं, और इसके सकारात्मक उपयोग की दिशा में प्रेरित हो रहे हैं। इसमें कोई शक नहीं है कि नये संचार माध्यमों पर हो रहा लेखन एक प्रकार का नयापन लेकर आ रहा है। कहीं-कहीं साहित्य की दुनिया में, तोड़-फोड़ भी कर रहा है। चाहे वह फेसबुक पर किया जाने वाला लेखन हो या तरह-तरह के ब्लॉगों का लेखन। छोटी-छोटी पोस्ट हों या उनके जरीए पैदा हुआ और चला वाद-विवाद-संवाद।

कभी-कभी भड़ास निकालने वाला लेखन भी सोशल मीडिया पर खूब दिखाई देता है। यह भी एक प्रकार का पॉपुलर लेखन है, पर यह एक खास वर्ग के बीच ही संचरित हो पाता है। लगभग एकायामी चरित्र लिए हुए। इसी में से उभरते लेखन को पॉपुलर माना जा रहा है। जाहीर है आज पॉपुलर साहित्य का स्वरूप बदल रहा है. यह अलग प्रश्न है कि यह 'टिकाऊ' कितना है और 'बिकाऊ' कितना। 'टिकाऊ' और 'बिकाऊ' का यह द्वंद्व हिंदी समाज में अरसे से रहा है। क्या इसे ही गंभीर साहित्य और पॉपुलर साहित्य का अंतर माना जा सकता है? एक नया लेखक वर्ग भी इधर के सालों में उभरा है, जो युवा मन को लुभाने वाला साहित्य रच रहा है। हैरानी की बात यह है कि इस वर्ग का लेखक मैनेजमेंट, इंजीनियरिंग वगैरे की पढ़ाई-लिखाई करके आया है। इसमें से कई अंग्रेजी में लिखते हैं और फिर उसका अनुवाद विभिन्न भाषाओं, खासकर हिंदी में होकर आता है। कुछ ऐसे भी है, जो सीधे हिंदी में लिखते हैं। यह लेखक वर्ग भारतीय मिथकों, पुराणकथाओं, इतिहास की घटनाओं आदि को आधार बनाता है।

हम कह सकते है कि एक वर्ग की युवा मानसिकता में सामाजिक-सांस्कृतिक संबंध-सूत्रों का बदलाव भी तेजी से हुआ है। इस युवा वर्ग का समूचा ताना-बाना वह नही रह गया है, जो आज से बीस-पच्चीस वर्ष पहले हुआ करता था या जिसे वह अपने घर-देहात-गाँव से लेकर चला था। आज उसे लगता है कि सब कुछ चलता है। उसे सब कुछ तुरंत-फुरत चाहिए. इसके लिए जो भी शॉर्टकट है, उसे करने में कोई हिचक या गुरेद नहीं। ऐसे में उसे गंभीर साहित्य में आस्वाद कहाँ से आएगा। जो उसके जीवन में है ही नहीं, उसे वह साहित्य में क्यों कर देखना चाहेगा। ऐसे में उसे इस प्रकार का लोकप्रिय साहित्य अधिक

रुचिकर लगे तो आश्चर्य क्या! पर प्रश्न है कि क्या पॉपुलर साहित्य गंभीर साहित्य के सामने कोई बड़ी चुनौती प्रस्तुत कर रहा है? किस प्रकार का दबाव बना रहा है? क्या इससे साहित्य की गंभीर विधाओं में किसी प्रकार की तोड़-फोड़ हो रही है? क्या यह कह कर बात को टाला जा सकता है कि आज का लोकप्रिय साहित्य 'बिकाऊ' तो अवश्य है पर 'टिकाऊ' कितना है? इसमें आज की सृजनशील संभावनाएँ, नवाचार, जीवन की नई लय की तलाश कितनी हुई है? इन प्रश्नों के उत्तर अभी भविष्य के गर्भ में हैं, शायद अभी आने बाकी है।

2.3.1.7 पॉपुलर साहित्य के प्रकार

आम तौर पर साहित्य के दो प्रकार माने गये हैं- दृश्य और श्रव्य। फिर श्रव्य के दो भेद- वाचिक और लिखित हैं। लिखित के फिर दो भेद हैं- गद्य और पद्य। उसी प्रकार विधा के आधार पर आज के पॉपुलर साहित्य के दो प्रकार हैं- गद्य और पद्य। गद्य में लप्रेक (लघु प्रेम कथा), फलक (फेसबुक लघु कथा) जैसी कहानियाँ है और पद्य में यूनी कविताएँ हैं। इनके अतिरिक्त स्मृतियों के आधार पर संस्मरण, यात्रा उनके आधार पर यात्रा वृत्तांत इत्यादि। समकालीन पॉपुलर साहित्य का विभाजन इंटरनेट के विविध माध्यमों या शैलियों के आधार पर भी किया जा सकता है।

2.3.1.7.1 वेबसाईट पर उपलब्ध पॉपुलर साहित्य

वेबसाईटों पर उपलब्ध पॉपुलर साहित्य में पुराने साहित्य भी उपलब्ध है। जिनमें 'समय डॉट कॉम', 'रचनाकार डॉट ओआरजी' इत्यादि प्रमुख हैं।

2.3.1.7.2 सोशल मीडिया पर उपलब्ध पॉपुलर साहित्य

समकालीन पॉपुलर साहित्य उद्भव और विकास में सोशल मीडिया की सबसे अहम भूमिका हैं। जिसमें फेसबुक अग्रणी है। आज का लप्रेक और फलक जैसी कथाएँ फेसबुक की देन है।

2.3.1.7.3 ब्लॉग्स पर उपलब्ध पॉपुलर साहित्य

ब्लॉग्स पर उपलब्ध साहित्य में आप यूनी कविताओं की गणना कर सकते है। इन विविध माध्यमों में आगे चलकर और भी पॉपुलर साहित्य के रूपों के उभरने की संभावना है।

संक्षेप में हम कह सकते है कि पॉपुलर साहित्य वही है, जो साहित्य व्यापक जनसमुदाय के बीच सहज रुप में ग्राह्य और स्वीकार्य हो। सरलता, सहजता और सुबोधता आदि ऐसे साहित्य के गुण हैं। वही साहित्य व्यापक जनता में लोकप्रिय होता है, जिसमें जन-जीवन की वास्तविकताएँ और आकांक्षाएँ सहज-सुबोध रुप में व्यक्त होती है। पॉपुलर साहित्य के लेखक मीडिया, मैनेजेमेंट, इंजीनियरिंग वगैरह दुनिया से आए हैं। हिंदी में पॉपुलर साहित्य का जो स्पेस बढ़ रहा है, उससे हिंदी का ही विस्तार हो रहा है।

2.3.2 लप्रेक एवं यूनी कविता परिचय एवं वैशिष्ट्य

2.3.2.1 प्रस्तावना

अब हम लप्रेक और यूनी कवियों के परिचय और उनकी विशेषताओं की जानकारी प्राप्त करेंगे। हम जानते है कि प्रेमचंद से लेकर फणीश्वरनाथ रेणु अगर आंचलिक कथाकार रहकर अपने समय के अगुआ रहे तो निलेश मिश्रा, रवीश तथा कुछ अन्य युवा लेखक 'युवा हिंदी' के पुरोधा तो कहे ही जा सकते हैं। गाँव के बाद हिंदी के लिए 'शहर' शब्द बड़ा चिर-परिचित हो गया है। वह चाहे नीलेश मिश्रा का 'यादों के घर' हो या रवीश का 'इश्क में शहर होना' यह सुखद संयोग ही है। जहाँ हिंदी रचनाओं को युवा पाठक बड़े चाव से पढ़ने सुनने लगे हैं। वहाँ अब अलगू, होरी और हिरामन के अलावा कहानियों में तृषा और तन्मय नाम से नये किरदार भी आने लगे हैं।

हिंदी सजनात्मक लेखन में नावाचार में लप्रेक और यूनी कविता बेहद पॉपुलर हैं। लप्रेक शृंखला में अब तक तीन रचनाएँ प्रकाशित हुई हैं। तीनों में लगभग समान समय में मगर अलग-अलग निगाह से प्रेम को देखा, समझा और परखा गया है। मगर तीनों लप्रेक प्रेम के भिन्न आयाम भिन्न दृष्टिकोन से दर्शाते हैं। उसी तरह यूनिकोड से जोड़कर देवनागरी में इंटरनेट पर लिखी जानेवाली यूनी कविता भी बेहद पॉपुलर हो गई है। इंटरनेटीय साहित्य में इनकी अवस्था अभी अधिकतम 5-6 वर्षों की है। लेकिन साहित्य की दुनिया में इनकी दस्तक धमाकेदार रूप में हुई है। साहित्य में ऐसा धमाका कभी नहीं देखा गया। आज यह साहित्य आम जन-जीवन तक कम्प्युटर, मोबाईल, टेबलेट आदि इलेक्ट्रॉनिक माध्यमों से पहुँच रहा है। खासतौर पर से समय में, जब मनुष्य लगातार संवेदनहीनता की ओर बढ़ता जा रहा है।

1.2.3.2.2 लप्रेक का अर्थ और शुरुआत

लप्रेक का अर्थ है- 'लघु प्रेम कथा'। लप्रेक किस्सागोई का नैनो संस्करण है। जहाँ चंद शब्दावली में कहानी गढ़ी जाती है यहाँ कहानियाँ नैनो हैं, न्यून नहीं। दरअसल 'लप्रेक' की शुरुवात फेसबुक से हुई थी और रवीश कुमार इसके अगुआ है। तब धीरे-धीरे बहुत से लोग इस विधा में सामने आने लगे लेकिन अब वह दौर बीत चुका है। 'लप्रेक' जब शुरू हुई तो इसके सामने यह चुनौती थी कि फेसबुक के छोटे से स्पेस में कविताओं को थोड़ा परे खिसकाते हुए कहानी जैसी किसी चीज के लिये कोई जगह बनायी जाए। इसके लिए जरुरी थी, चुटीली और बांधने वाली भाषा, कुछ नये चटकीले मुहावरे और कुछ अनोखे से बिंब। लप्रेक इन सारी शर्तों को पूरा करती थीं। इसलिए इन्हें फेसबुक पाठकों ने खूब पसंत किया। हालाँकि जब वे इस दुनिया से निकलकर साहित्य प्रेमियों की जमात तक पहुंची तो एक नयापन, एक प्राप्ति जो किसी गंभीर रचना को पढ़ लेने के बाद हम में होती है, वह यहाँ सिरे से नदारत लगी। लप्रेक पर इसका दोषारोपण करना शायद ठीक नहीं है। बहुत हद तक यह दोष हमारे समय का भी है। तुरंत कुछ पा लेने, रच लेने और जी लेने की हड़बड़ी वाले दौर का है। घर का भोजन छोड़कर पिज्जा-बर्गर खाते हैं और खूब सराहते हैं। उसी तरह लप्रेक को भी साहित्य का फास्ट-फूड कह सकते हैं। चौंकाऊ, दिल-बहलाऊ और मनोरंजनकारी इसके अनिवार्य गुण है।

लप्रेक 'सार्थक' (Sarthk : An Imprint of Rajkamal Prakashan) द्वारा शुरू की गई 'लघु प्रेम कथा' की एक श्रृंखला है जहाँ कहानियाँ किसी फेसबुक के मध्यम स्टेटस जितने छोटे-बड़े हो सकते हैं। 'इश्क में शहर होना' इस शृंखला की पहली कड़ी है। इसके साथ दो और लप्रेक आये। हिंदी का प्रयोग कालांतर में 'लप्रेक' शब्द खुद-ब-खुद एक नयी प्रवृत्ति या गद्य की श्रेणी बन गई है। आज के पॉपुलर साहित्य में इसे खूब सराहा जा रहा है।

2.3.2.3 लप्रेक कवियों का परिचय और वैशिष्ट्य

लप्रेक कवियों का परिचय और उनकी रचनाओं की विशेषताओं के बारे में जानकारी प्राप्त करते हैं। प्रसिद्ध पत्रकार रवीश कुमार द्वारा लिखी लप्रेक की पहली रचना है- 'इश्क में शहर होना'। इसमें उन्होंने लिखा है कि वह शहर में पैर जमा रहे उस युवा के शब्द हैं, जिसके साथ उसकी प्रेमिका या प्रेम की अनुभूति है। यहाँ कहानियाँ अलग अलग चरणों और परिदृश्य में है। खास से लेकर खामियाजा, दिल्ली के भागम-भाग से लेकर भावनात्मक भित्तिचित्र इत्यादि। नब्बे पन्नों के इस छोटी-सी किताब में सब कुछ है। काबिल-ए-गौर है कि इस किताब में रुमानी और परेशानी एक ही स्याही से छपी है।

'इश्क में शहर होना' जिंदगी नहीं, अलग-अलग परिप्रेक्ष्य में किसी खास पल या घटना की कहानी बताता है जिसे ताने-बाने में फिर से एक पूरी जिंदगी की झलक मिलती है। बहुत छोटी कहानियों के साथ रवीश पढ़वाते कम परंतु सोचवाते ज्यादा है। कुल मिलाकर इसे पढ़ने में समय उतना ही लगता है जितना सौ पन्नों की अन्य किताब को। कहानियाँ बेशक छोटी हैं, अनुभूति नहीं। चार लाईन पढ़कर दस लाईन तक सोचिए कहानियाँ कुछ ऐसी हैं।

गिरींद्रनाथ झा की 'इश्क में माटी सोना' दूसरी लप्रेक रचना है। वे कॉफ़ी के झाग में जिंदगी खोजने की कथा कहते हैं। गिरींद्रनाथ जिंदगी की कथा को जोतते हुए कहते हैं। गिरींद्रनाथ कहीं भी रेणु नहीं हुए हैं मगर रेणु का रूपक उनके समांतर चलता है। गिरींद्रनाथ रवीश भी नहीं हुए है मगर रवीश की शैली से अलग समांतर चलते हैं। अगर आप रेणु और रवीश के लिए गिरीन्द्रनाथ को पढ़ते हैं तो आप खुद से न्याय कर पाते है। गिरीन्द्रनाथ चनका और दिल्ली के भरम जीते, तोड़ते और जीते हैं। गिरीन्द्रनाथ अपने लप्रेक में छूटे हुए गाँव चनका के साथ दिल्ली में जीते हुए अपनी प्रेम यात्रा में गाँव को दिल्ली के साथ जीने चले जाते है। गिरीन्द्रनाथ अपने अनुभव के प्रेम की गाथा कह रहे हैं, यह भोगा हुआ यथार्थ है। उनके यहाँ प्रेम सम्बल की तरह खड़ा है, उनका मेंरुदंड है, साथ ही उलाहना और सहजीवन है। परंतु गिरींद्रनाथ के लप्रेक में प्रेम ही नहीं है, प्रेम के बहाने बहुत कुछ है।

तीसरे लप्रेक का नाम है- 'इश्क कोई न्यूज नहीं' विनीत कुमार इसके लेखक है। इनका लप्रेक रवीश कुमार के लप्रेक 'इश्क में शहर होना' और गिरीन्द्रनाथ झा के 'इश्क में माटी सोना' से कोई मायनों में भिन्न है। इन कहानियों में विनीत कुमार की स्त्री-पुरुष संबंध और प्रेम संबंध की परिपक्व समझ और उनके अंतरंग विवरण से उनका साम्य उजागर होता है। अधिकतर कहानियों में महिला पात्र स्पष्टत: मुखर हैं। यह कहानियाँ प्रेम की उस बदलती इबारत की कहानियाँ है जिसमें स्त्री सजीव, बुद्धिमान, बुद्धिजीवी और

सुस्पष्ट है। यहाँ स्त्री समाज के सभी सारोकारों के साथ समान तल पर खड़ी है। पुरुष पात्रों में नये बदलते समीकरणों के प्रति एक लाचारगी, बेपरवाही और नादानी भी झलक जाती है। विनीत कुमार के लप्रेक हल्के-फुल्के होते-होते गंभीर हैं और अपने संवादों के कारण दूर तक मार करते हैं। विनीत कुमार का लप्रेक केवल डिजिटल रोमान्स नहीं है बल्कि खुदरा प्यार की थोक खबर है, इसमें उस इश्क की बात है जो मरता है। विनीत कुमार का लप्रेक न मरते इश्क को मारते- मारते जीने और जीते जाने की लघु कथा है।

विनीत कुमार उस युवा वर्ग से हैं जो जानता-समझता है कि ''काफी हाऊस में पैसे किसी के भी लगें, कलेजा अपना ही कटता है।'' विनीत कुमार का इश्क ब्रेकअप की मौजूदगी में अंकुरित होता और अपने सभी शर्तों-समर्पणों और समझदारी में फलता-फूलता है। कहानियाँ अपनी लघुता में संपूर्ण हैं और उनके संवाद ज़ुबान पर चढ़ जाते हैं।

लप्रेक में इश्क के बाद सबसे महत्त्वपूर्ण है- चित्रांकन। विक्रम नायक द्वारा अंकित चित्र कहानियाँ। लप्रेक में विक्रम नायक सशक्त और समांनातर कथा लेखक हैं। वह लप्रेक के रचनाकारों के कथन से अधिक पाठ को समझाते हैं और रचते हैं। विक्रम केवल पूरक नहीं है बल्कि अपनी समानान्तर गाथा चित्रित करते हैं। लप्रेक में बहुत से विवरण हैं। जहाँ विक्रम नायक लप्रेक के पूरक हैं परंतु वह कई स्थान पर स्वयं के रचनाकार को उभरने देते हैं। विक्रम के चित्र अपनी स्वयं की कथा कहते जाते हैं- उनमें गंभीरता, व्यंग्य, कटाक्ष है। रवीश कुमार कहते भी हैं कि ''किताब जितनी मेरी है उतनी ही विक्रम नायक की भी है। जब किताब खोली तो विक्रम नायक सबसे पीछे दिखाई दिए तो मैंने उन्हें आगे करते हुए, पीछे से किताब पढ़ना शुरू किया।''

लप्रेक रचनाओं की विशेषताएँ

1. यह तीन किताबें एक ही शृंखला का हिस्सा हैं। इनका सूत्र है दिल्ली। इन तीनों किताबों में बहुत कुछ मूलभूत एकरूपता हैं, उसके घटित होने की जगह दिल्ली भी है। ये कहानियाँ दिल्ली के कॉफी हाऊस, रेस्तरां, रेस्टॉरंट, सिनेमा हॉल, मॉल के साथ यूनिवर्सिटी कॅम्पस, इसकी गलियों, मुहल्लों, सड़कों की खाक छानती गुजरती है। यहाँ दिल्ली केवल कॉफी टेबल का शहर नहीं है। इन किताबों को पढ़ते हुए हम अपने-अपने मन में बसे शहरों से गुजरते हैं। अपने विगत प्रेम को, विगत शहरों को जीने लगते हैं, उनमें रहने लगते हैं। कोई अंतर्यात्रा चलती होती है हमारे भीतर। साफ-साफ शब्दों में कहें तो हम इसका हिस्सा होने लगते हैं। प्रेम हमें शहर से अपनी अजनबीयत दूर करने का मौका देता है। इस नजर से लप्रेक किसी शहर को अपनाने और अपना बनाने की कथा हैं। प्रेम इस पूरी प्रक्रिया का एकमात्र संसाधन है।

2. ये प्रेम कथाएँ कुछ मायनों में उस क्षण के बीते जाने की कथाएँ हैं। कुछ प्रेम रीत जाने की भी कहानियां हैं या 'प्रेम' जैसा कुछ होने या उनमें होने की। यहाँ प्रेम भी एक बार होने वाली चीज नहीं है।

3. रवीश कुमार न्यूज से लेकर लेखन और लेखन से आगे राजनीति तक का सफर तय करते है। गिरींद्रनाथ इन लघु प्रेम कथाओं में गाँव से शहर और फिर शहर से गाँव तक की और विनीत गाँव से शहर के साथ कैंपस से न्यूज चैनल और न्यूज चैनल से फिर कैंपस तक की यात्रा करते हैं।

4. तीनों लप्रेककार बिहार में पले-बढ़े हैं और दिल्ली पहुंचकर एक नई दुनिया, नये संबंध और नये प्रेम को समझते हैं।

5. तीनों लप्रेककार मीडिया जगत् से जुड़े रहकर मीडिया के मोह से मुक्त हैं। दुनिया को देखने का उनका तरीका आम इंसान के तरीके के मिलता-जुलता मगर भिन्न है।

6. 'बिहार' दिल्ली के बाद दूसरा ठौर है जो इन कहानियों में बोलता-जागता है और वह भी अपनी पूरी ठसक और वैभव के साथ। यहाँ की लोकभाषा का छिड़काव और बहाव तीनों गद्य में अपनी-अपनी तरह से है।

7. गिरीन्द्रनाथ की भाषा में मिट्टी की जो गमक है वैसी दो किताबों में नहीं है। पत्रकारिता से किसानी तक की उनकी यात्रा की खुशबू उनके लेखन में साफ-साफ सूंघी जा सकती है। गिरीन्द्र का गद्य फणीश्वरनाथ रेणु की याद दिलाता है। वही रवानी और जड़ों से जुड़े होने की वही गंध। शायद इसका कारण उनका एक ही अंचल (कोसी) को साझा करना भी हो सकता है। फिर भी यदि रेणु वाली गहराई और उत्तरजीविता यहाँ नहीं है तो उसे कुछ गिरींद्र की और कुछ इस विधा की सीमा समझी जानी चाहिए।

8. प्रेम लघु होता है। सो ये कथाएँ भी लघु हैं। अब सवाल है कि प्रेम इतना लघु क्यों होता है। पानी के बुलबुले की तरह नश्वर और क्षणों में मिट जाने वाला, पर साथ ही देहद खूबसूरत। क्या ऐसा तो नहीं कि उसकी खूबसूरती इसी क्षणभंगुरता में ही समाई होती है। ये प्रेम कथाएँ कुछ मायनों में उस क्षण के बीते जाने की कथाएँ है। कुछ प्रेम रीत जाने की भी कहानियाँ हैं या 'प्रेम' जैसा कुछ होने या उसमें होने की। यहाँ प्रेम भी एक बार होने वाले चीज नहीं है, सो प्रेमपात्र भी एक नहीं है।

9. गिरीन्द्र की किताब 'इश्क में माटी सोना' में प्रेम ज्यादा भरोसेमंद और विश्वास से भरा दिखता है।

10. इन तीनों किताबों में दोहराव भी खूब है। एक ही लेखक की रचनाओं में और अन्य लेखकों में भी।

11. शहर ही यहाँ प्रेम पात्र भी है और खल पात्र भी है। रिश्तों की क्षणभंगुरता तीनों की कहानियों के केंद्र में है।

12. दिल्ली से जुड़ी उन कहानियों में जहाँ पंजाबी लड़की और बिहारी लड़के या दूसरे शब्दों में कहे तो आधुनिक सी लड़की और बावरा सा मंत्रमुग्ध और प्रेम में डुबा हुआ सा एक लड़का केंद्रीय किरदार है। यहाँ विसंगति समय की ज्यादा है, दिल्ली की कम। हालाँकि इन तीनों में विनीत और गिरीन्द्र के पास निम्न तबके के, मजदूर वर्ग के लोगों की भी प्यारी और सोंधी सी प्रेम कथाएँ हैं।

13. इस शृंखला के तीनों लेखक साथ मिलकर प्रेम का एक मुकम्मल चेहरा रचते हैं। इन्हें साथ-साथ पढ़ने से ही एक चित्र बनता है। कई सवालों के हल भी मिलते हैं। मसलन रवीश को पढ़ते हुए उपजे

इस सवाल का जवाब कि इश्क में हम शहर ही क्यूँ नहीं हो सकते? का जवाब गिरीन्द्र को पढ़ने के बाद मिलता है। यदि ये किताबें स्वतंत्रता और स्वायत्तता में कोई पूर्ण चेहरा या बिम्ब ही बना पातीं जो ज्यादा बेहतर होता।

14. तीनों किताबो में भाव विचारों, दृश्यों और बिम्बों तक में दोहराव दिख जाता है।

15. इन तीनों किताबों से गुजरने पर कई सवाल आते हैं जैसे कि शहर, गाँव और न्यूज- रूम की प्रेम कथाओं के बाद इस विधा में लिखी कहानियों की अगली पृष्ठभूमि क्या होगी? साहित्य की अन्य विधाओं से उलट यह विधा क्या इतने को ही थी? हर विधा की तरह यही कुछ लेखक इसमें बार-बार लिखेंगे या कुछ अन्य नाम भी शृंखला में आगे आने को तैयार हैं?

2.3.2.4 यूनी कविता का अर्थ और शुरुआत

इंटरनेटीय साहित्य गैर-गंभीर है। इसी मिथक को तोड़ने का प्रयास है- यूनी कविता। यूनिकोड से जोड़कर जो कविता लिखी गई, उसे यूनी कविता कहते है। आप जानते हैं कि यूनिकोड एक तरह का हिंदी फॉण्ट है, जिसे कम्प्युटर पर रोमन में टाईप कर हिंदी देवनागरी में लिखा जाता है। इस फॉण्ट में हिंदी साहित्य विशेष रूप से कविता के लिये 'हिंदी युग्म डॉट कॉम' ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी। कवियों और पाठकों को इस वेबसाईट ने हिंदी में सीधे कम्प्युटर पर लिखना सिखाया। उनकी रचनाओं को डिजिटल स्पेस दिया। उन्हें गंभीरता की ओर मोड़ा भी। इस वेबसाईट पर वर्ष 2006 से वर्ष 2010 तक प्रकाशित 38 संभावनाशील कवियों की प्रतिनिधि कविताओं को 'संभावना डॉट कॉम' नामक संग्रह में सम्मिलित किया गया।

इस संग्रह के संपादक का मानना है कि दुनिया भर में हिंदी से जुड़ी गतिविधियों जैसे की आयोजन, कार्यक्रम, कवि संमेंलन, गोष्टियाँ, प्रतियोगिताएँ, पुरस्कार-वितरण सन्मान-समारोह इत्यादि के बारे में जानकारी को इंटरनेट ने इजाफा किया। मुद्रित पत्रिकाओं के माध्यम से पाठकों तक सब कुछ छनकर पहुंचता था और इंटरनेट की तरह सभी पत्रिकाओं को देख पाना आसान भी नहीं था।

इंटरनेट पर हिंदी में सबसे ज्यादा कविताएँ प्रकाशित हो रही हैं और उसके उलट गंभीर और प्रतिष्ठित पत्रिकाओं में कविताओं का स्थान छोटा होता जा रहा है। प्रिंट की दुनिया में थोड़ा मुश्किल और खर्चीला काम होता है कि नये पन्ने अलग से जोड़े जाएँ। यहाँ हर नई चीज पुरानी और बासी पड चुके विषयों, मुद्दों और विधाओं को रिप्लेस करके अपनी जगह बनाती है। ऐसे में अच्छा-बुरा लिखने वाले हर कवि के पास तीन विकल्प मौजूद थे। पहिला, अपना एक ब्लॉग बनाए और अपनी कविताएँ वहाँ चिपका दे। दूसरा, पैसा खर्च करके संग्रह निकाले ले। या फिर तीसरा विकल्प, कविताओं को डायरी तक सीमित रखे। इन तीनों में से अंतिम दो विकल्प कवि के स्वभाव और चाहत के प्रतिकूल थे। इंटरनेट पर प्रकाशित कविताओं पर आलोचकों की राय बेशक 'रिसाइकल बिन' के रूप में थी। लेकिन यहाँ सबकुछ कूड़ा नहीं है। बहुत-सी कविताओं में मानवीय संवेदनाओं की तंदुरुस्ती है। बकौल 'संभावना डॉट कॉम' के संपादक शैलेश भारतवासी- ''हिंदी कविता का रास्ता अब इंटरनेट से भी होकर जा रहा है। बहुत संभव है कि ढेरों पाठक,

लेखक, आलोचक शायद ही कभी इस रास्ते से होकर गुजरें इसीलिए बेहतर होगा कि इन्हें ही उनके रास्तों में कहीं-कहीं जुगनू की तरह टांक दिया जाए। एक उद्देश्य यह भी रहा है कि... हिंदी साहित्य में गैर पारंपरिक माध्यमों से पाठकों तक पहुँचने का रास्ता न तो गंभीर पाठकों की ओर जा पाता है न मनोरंजन की उम्मीद रखने वाले पाठकों तक।''

'संभावना डॉट कॉम' कविता संग्रह में प्रस्तुत अड़तीस कवि पेशे से इंजिनियर, मेधावी छात्र और पत्रकार है। इन यूनीकवियों की प्रतिनिधि कविताओं को इस किताब में संजोया गया है। इसमें तर्कशील और नई सोच के पैरोकार कवियों की रचनाएँ साहित्य को और अधिक उर्वर करने वाली हैं। यह किताब हिंदी की डिजिटल परंपरा का करीब से परिचय कराती है।

इस कविता संग्रह की खूबी यह है कि वह हिंदी कविता के नये हस्ताक्षरों को आपसे एक साथ रू-ब-रू कराती है। इससे फायदा यह होता है कि पढ़ने वालों को यह बात आसानी से समझ आ जाती है कि नई पीढ़ी की रेंज कैसी है और एक ही विषय पर वह कितना अलग-अलग तरीके से चीजों को सोच या समझ रहे हैं।

'संभावना डॉट कॉम' कविता संग्रह के लोकार्पण के अवसर पर टिप्पणी करते हुए आलोचक आनंद प्रकाश ने कहा है कि ''निश्चित रूप से मेरे लिए यह नया अनुभव है। अब तक हम कविताओं को या तो किसी संकलन में पढ़ते थे या किसी पत्रिका में, लेकिन मेरे लिए यह पहली बार है कि ये कविताएँ पहले से ही नेट पर प्रकाशित हैं और हम इसे पुस्तक के रूप में देख रहे हैं। आमतौर पर लोग नये का विरोध करते है, लेकिन मैं इस नये प्रयोग का स्वागत करूँगा। कवि केदारनाथ सिंह ने 'संभावना डॉट कॉम' में प्रकाशित कविताओं को एक रसिक के रूप में पढ़ने की बात कही है। उनकी राय है कि युवा कवियों के नये संकलन को जल्दबाजी में नहीं देखो, बल्कि प्रतीक्षा करो, उन्हें फलने दो, बढ़ने दो। इसकी क्षणिक समीक्षा इनकी प्रतिभाओं के साथ न्याय नहीं होगा। वे जोर देकर कहते हैं- ''ये कविताएँ इक्कीसवीं सदी की आवाज हैं, नई आवाज हैं, मैं इन्हें उंगली नहीं दिखाऊंगा, मैं इनका स्वागत करूँगा।

इस पुस्तक में नई कविताएँ समाज, देश, काल, वातावरण, धर्म, ईश्वर, शिक्षा पद्धति, राजनीति, दर्शन सहित मनुष्य से संबंधित अन्य तथ्यों की गहन विवेचना करती हैं। इस संग्रह में संकलित लगभग सभी कवि हिंदी साहित्य से पाठ्यक्रम के तौर पर नहीं जुड़े है। इसके बाद भी वह संवेदनाओं के महीन धागे से ऐसी तस्वीर उकेरते हैं कि पाठक रूक कर सोचने के लिए मजबूर हो जाए। बेशक, कहीं-कहीं कविगण भावनाओं और सोच का तालमेंल नहीं बिठा पाए हैं। यह बात है लेकिन हिंदी साहित्य के गहन अध्ययन के बगैर कवियों ने अपने संवेदनाओं की ऐसी खेती कर दी है कि किसी विश्वविद्यालय के हिंदी के प्रोफेसर और विद्यार्थी भी अचम्भित हो जाएँ।''

2.3.2.5 यूनी कवियों का परिचय और वैशिष्ट्य

अब हम एक दृष्टि यूनी कवियों की कविताओं पर डालते है। यूनी कवियों में अधिकांश कवियों की कविताएँ मुख्यधारा की पत्रिकाओं में प्रकाशित होने से वंचित थी। उनमें से कुछ ने बड़ी पत्रिकाओं में प्रकाशित करने का प्रयास भी किया लेकिन उनकी कविताएँ संपादकों की डेस्क तक पहुँच ही नहीं पायीं।

इनमें से अधिकांश यूनी कवि पेशे से इंजिनियर, मेधावी छात्र और पत्रकार है। ज्यादातर कवि तकनीक की दुनिया से जुड़े है। अर्थात् वे साहित्य की ट्रेनिंग लेकर कविता लेखन में नहीं आये हैं। लेकिन संवेदना की जिस जमीन पर खड़े हैं होकर कविता की रचना होती है, वो इनके आसपास ही है।

कविता का संवेदना से सीधा रिश्ता होता है। कविता के लिए पत्रिकाओं में और लोगों के दिलों में लगातार कम होता स्थान कहीं-न-कहीं संवेदनहीन होते समाज का संकेत है। इसे खतरे की घंटी के रूप में देखना होगा। मानवीय संवेदनाओं के बीज कविताओं की फसल बनकर लहलहाते हैं। बाजार का शिकार मनुष्य दिनोंदिन ऊसर में तब्दील होते जा रहा है। ऐसे में ये यूनी कवि खेतों में खाद-पानी देने का प्रयास कर रहे हैं, जहाँ संवेदना की फसल उग सकती है।

अखिलेश श्रीवास्तव की 'विदर्भ : कर्जे में कोपल', 'हँसी', अनुराधा श्रीवास्तव की 'नारी क्यों मौन रहती है', अपूर्व शुक्ल की 'समय की आदालत में', 'इक्कीसवीं सदी का भविष्य', आकांक्षा पारे की 'इस बार', 'एक टुकड़ा आसमान', 'चिंता', 'बदलती परिभाषा', 'ईश्वर' कविताएँ मन को माँज देती हैं. सभी की रचनाओं का भाव समान है। गौरव सोलंकी की कविता 'जरा सी अनपढ़ता' और 'बहुत सारी बेवकूफी के लिए' और पावस नीर की कविता 'जुलाई का पहिला हफ्ता' लाजवाब हैं। किताब को पढ़कर लगता है कि इसमें प्रकाशित रचनाकारों की आपसी सोच में कोई व्यापक अंतर नही है।

इनमें से कुछ कवियों की शैली आज छांदस है लेकिन केवल इतने मात्र से समाप्त नहीं होती। मानवतावादी विचार की झलक दिखाना ही इन कवियों की विशेषता है। बेशक अब हिंदी कविता का रास्ता इंटरनेट की राह से होकर गुजरने लगा है।

यूनी कविताओं पर गहन नजर आपको कुछ नये तथ्यों से अवगत कराएगी। मसलन, इन कविताओं की भाषा और उसके अंदाज चौंकाने वाले हैं। जयशंकर प्रसाद, सुमित्रानंदन पंत, सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' के समय की भाषा से बिलकुल इतर बोल इसमें नये जमाने की सूचना देते हैं। इन्हें पढ़कर लगता है कि ये सारे कवि अपनी भाषा में नये हस्ताक्षर के साथ अपनी बात कहने का माद्दा रखते हैं। कवियों के कहने का अंदाज बिलकुल जुदा-जुदा है। यूनी कविताओं में कई तरह की शैली हैं। जब कविताएँ आपका हाथ पकड़ लें, जाने न दें तो समझो कि कविता सफल है। यूनी कवियों की कई कविताएँ पाठकों को रोकती हैं, टोकती हैं, झकझोरती हैं। इसके कवि उम्र से युवा लेकिन विचार से प्रौढ़ नजर आते हैं।

संक्षेप में हम कह सकते है हिंदी सृजनात्मक लेखन में नवाचार में लप्रेक और यूनी कविता बेहद पॉपुलर हैं। लप्रेक शृंखला में अब तक तीन रचनाएँ प्रकाशित हुई हैं। तीनों में लगभग समान समय में मगर अलग-अलग निगाह से प्रेम को देखा, समझा और परखा गया है। मगर तीनों लप्रेक प्रेम के भिन्न दृष्टिकोण से दर्शाते हैं। उसी तरह यूनीकोड से जोड़कर देवनागरी में इंटरनेट पर लिखी जाने वाली यूनी कविता बेहद पॉपुलर हुई है। इंटरनेटीय साहित्य में इनकी अवस्था अभी अधिकतक 5-6 वर्ष ही हुई है। लेकिन साहित्य की दुनिया में इनकी दस्तक धमाकेदार रूप में हुई है। साहित्य में ऐसा धमाका कभी नहीं देखा गया। आज यह साहित्य आम जन-जीवन तक कम्प्यूटर, मोबाईल, टेबलेट आदि इलेक्ट्रानिक्स

माध्यमों से पहुँच रहा है। ख़ासतौर पर ऐसे समय में, जब मनुष्य लगातार संवेदनहीनता की ओर बढ़ता जा रहा है।

लप्रेक का अर्थ है- लघु प्रेम कथा। लप्रेक किस्सागोई का नैनो संस्करण है। जहाँ चन्द शब्दावली में कहानी गढ़ी जाती है। यहाँ कहानियाँ नैनों हैं, न्यून नहीं। दरअसल 'लप्रेक' की शुरुवात फेसबुक से हुई थी और रवीश कुमार इसके अगुआ थे। तब धीरे-धीरे बहुत से लोग इस विधा में सामने आने लगे।

'संभावना डॉट काम' कविता संग्रह में यूनी कविताओं का संकलन किया गया है। इसमें प्रस्तुत अड़तीस कवि जो पेशे से इंजिनियर मेधावी छात्र और पत्रकार हैं। यूनी कवि तर्कशील और नई सोच के पैरोकार कवियों की रचनाएँ साहित्य को और उर्वर करने वाले हैं। यूनी कविताएँ हिंदी की डिजिटल परम्परा का करीब से परिचय कराती है।

कविता का संवेदना से सीधा रिश्ता होता है। कविता के लिए पत्रिकाओं में और लोगों के दिलों में लगातार कम होता स्थान कहीं-न-कहीं संवेदनहीन होते समाज का संकेत है। इसे खतरे की घंटी के रूप में देखना होगा। मानवीय संवेदनाओं के बीज कविताओं की फसल बनकर लहलहाते हैं। बाजार का शिकार मनुष्य दिनोंदिन ऊसर में तब्दील होते जा रहा है। ऐसे में ये यूनी कवि खेतों में खाद-पानी देने का प्रयास कर रहे हैं, जहाँ संवेदना की फसल उग सकती है।

2.3.3 गैरकथात्मक लेखन और नवाचार

2.3.3.1 प्रस्तावना

आमतौर पर साहित्य का अर्थ 'कहानी', 'उपन्यास', 'कविता' या 'नाटक' लेखन आदि से लगाया जाता है लेकिन वर्तमान में साहित्य के विविध रूप पाठकों के समक्ष आ रहे हैं। जितनी तेजी से आज समय बदल रहा है उसी गति के साथ प्रत्येक क्षेत्र में बदलाव नजर आ रहे हैं और यही कारण है कि साहित्य के भी अलग-अलग रूप दिख रहे हैं। यद्यपि गैर कथात्मक साहित्य आज की देन नहीं है। यह पिछले काफी समय से लिखा जाता रहा है लेकिन वर्तमान में अन्य विधाओं को एक स्पष्ट पहचान मिली है। मनुष्य की सृजनशीलता ने अभिव्यक्ति के नये-नये माध्यम खोजे और परंपरागत ढंग से चले आ रहे साहित्य लेखन को एक नया रूप देने के साथ ही एक नया बड़ा आकाश भी दिया। लेखक की अभिव्यक्ति नई-नई विधाओं के रूप में प्रस्फुटित हुई, जिसे हम नवाचार के रूप से जानते हैं। इन नवीन विधाओं के माध्यम से लेखक ने जीवन अनुभव, उसके ज्ञात और विभिन्न धारणाओं से पाठक परिचित हुआ। इस इकाई में गैर कथात्मक लेखन एवं नवाचार को केंद्र में रखते हुए नवीन विधाओं का परिचय देने का प्रयास किया गया है।

2.3.3.2 गैर कथात्मक लेखन और नवाचार : एक अवलोकन

भारत ने लंबे समय तक अंग्रेजों की गुलामी सही। अधिकतर सामंतों और नवाबों ने अंग्रेजों से संधि कर ली थी और अंग्रेजों ने धीरे-धीरे अपने व्यापार और सैन्य ताकत से भारत पर अधिपत्य स्थापित कर लिया। इस सबके मौजूद लोगों ने अंग्रेजी शासन के विरुद्ध संघर्ष किया। उन्होंने अनके माध्यमों से

जनजागृति का कार्य किया और भारतीय समाज को शोषक सत्ता का चेहरा दिखा उन्हें जागरूक बनाया। इसी जागरूकता को डॉ. रामविलास शर्मा हिंदी का नवजागरण कहते हैं।

समाज में परिवर्तन लाने के लिए एक सशक्त माध्यम की आवश्यकता होती है। साहित्य लेखन वह माध्यम है जो लोगों में सोचने और तर्क देने की शक्ति पैदा करता है। भारत में प्राचीन काल से ही महान साहित्य का सृजन होता रहा है। प्राचीन काल में अनेक महाकाव्य, वेद, पुराण आदि रचे गए और समाज इससे लाभान्वित हुआ। आधुनिक युग में लंबे समय तक कहानी, उपन्यास। कविता आदि लिखी जाती रहीं लेकिन इन विधाओं से इतर नयी विधाओं ने भी जन्म लिया और साहित्य में अपना अच्छा खासा स्थान बनाया। पाश्चात्य देशों के संपर्क में आने से भी भारतीय साहित्य समृद्ध हुआ और उसमें नयी विषयवस्तु उभर कर सामने आई। आज हम तकनीकी दुनिया में प्रवेश कर चुके हैं और साहित्यिक संसार से इंटरनेट के जुड़ाव को नकार नहीं सकते। अब हम गैर कथात्मक लेखन और नवाचार के विषय में चर्चा करेंगे। गैर कथात्मक विधाओं में निबंध, आलोचना, व्यंग्य, रेखाचित्र, संस्मरण, जीवनी, आत्मकथा जैसी विधाओं का समावेश होता है। इसमें से संस्मरण, जीवनी और आत्मकथा विधाओं की हम विस्तार से जानकारी प्राप्त करेंगे।

2.3.3.2.1 संस्मरण

आधुनिक हिंदी गद्य साहित्य में संस्मरण भी एक आकर्षक एवं आत्मनिष्ठ आधुनिकतम विधा है। जीवनी-परक साहित्य का यह अत्यंत ललित एवं लघु कलात्मक अंग है। संस्मरणकार अपनी व्यक्तिगत जीवन में अपने सम्पर्क में आये हुए अन्य व्यक्तियों के जीवन के विशिष्ट पहलु को कथात्मक शैली में रेखांकित करता है। हर व्यक्ति अपने जीवन में अनेक व्यक्तियों के सम्पर्क में आता है। सामान्य व्यक्ति उन क्षणों को विस्मृत कर देता है, किन्तु संवेदनशील एवं भावुक व्यक्ति इन स्मृतियों को अपने मन: पटल पर अंकित कर लेता है। इन क्षणों की स्मृति जब कभी आकुल कर देती है तभी संस्मरण साहित्य की सृष्टि होती है।

संस्मरण के मूल में अतीत की स्मृतियाँ निहित रहती हैं, जो व्यक्तिगत सम्पर्क का परिणाम होती हैं। उन्हीं स्मृतियों को संस्मरणकार सजीव रूप में प्रस्तुत करता है। 'संस्मरण-लेखक जो कुछ देखता है और अनुभव करता है, उसे अपनी अनुभूतियों में राग-संजित कर प्रस्तुत कर देता है। वह इतिहासकार की भांति तथ्यपरक विवरण भर नहीं देता, वरन अपनी अनुभूतियों को साहित्यिकता से अभिमंडित करता है। संस्मरणकार केवल महत्त्वपूर्ण बातों को ही नहीं लेता है, अपितु छोटी-से-छोटी घटना को भी चारुता के साथ अंकित कर देता है।

अंग्रेजी में संस्मरण के लिए दो शब्द प्रचलित हैं- 1. रेमिनिसेंसेज 2. मेम्वायर्स। लेखक अपने विषय में संस्मरण लिखता है तो उसे 'रेमिनिसेंसेज' कहा जाता है और जब वह किसी अन्य व्यक्ति के लिए लिखता है तो उसे 'मेम्वायर्स' कहते हैं। पर हिंदी में इन दोनों के लिए एक ही शब्द है 'संस्मरण' जो अधिक आत्मपरकता-द्योतक शब्द है।

'संस्मरण' शब्द 'सम+स्मृ+ल्युट (अण) से व्युत्पन्न है जिसका अर्थ है- 'सम्यक स्मरण', 'भली प्रकार से स्मृति'। 'सम्यक' शब्द का अर्थ है- 'पूर्णरूपेण' और 'पूर्ण रूपेण का आशय है- 'सहज आत्मीयता तथा गम्भीरता से किसी व्यक्ति, घटना, दृश्य, वस्तु आदि का स्मरण करना'। तात्पर्य यह कि संस्मरण का मूलाधार स्मृति है। अस्तु, स्मृति करने के कार्य के फल को संस्मरण कहते है। अथवा स्मृति पर आधारित आत्मकथा का रूप संस्मरण है।

भारतीय काव्यशास्त्र में संस्मरण अलंकार रूप में प्रयुक्त होता आया है। पर आज संस्मरण एक विशिष्ट साहित्यिक विधा के रूप में प्रचलित है। इसकी अपनी शास्त्रीय विशेषताएं हैं। इस विधा को विभिन्न विद्वानों ने अनेक ढंग से परिभाषित किया है। डॉ. रामचंद्र तिवारी के अनुसार- ''संस्मरण किसी स्मर्यमाण की स्मृति का शब्दांकन है,'' डॉ.नगेन्द्र ने संस्मरण के विषय में लिखा है- ''वैयक्तिक अनुभव तथा स्मृति से रचा गया इति-वृत्त अथवा वर्णन ही संस्मरण है।'' उनके कहने का तात्पर्य यह कि संस्मरण वह रचना है जिसमें लेखक अपने जीवन का वृत्तांत अथवा अपने जीवन में घटित घटनाओं का वर्णन करता है। अतीत के अनुभवों और प्रभावों को स्मृति के सहारे शब्दों में रूपायित करने वाली विशिष्ट गद्य विधा 'संस्मरण' है।

संस्मरण की रचना में वर्ण्य विषय, पात्र-योजना, परिवेश, भाषा-शैली और उद्देश्य यह प्रमुख तत्त्वों का समावेश रहता है। संस्मरण साहित्य को मोटे तौर पर आत्मकथात्मक संस्मरण, यात्रा-विवरणात्मक संस्मरण, डायरीनुमा संस्मरण, जीवनी-मूलक संस्मरण, श्रद्धांजलि-मूलक संस्मरण और मूल्यांकनपरक संस्मरण इन छह कोटियों में विभाजित किया जा सकता है।

जिस प्रकार नवीन साहित्य-रूपों का जन्म पत्र-पत्रिकाओं में माध्यम से हुआ है, उसी प्रकार हिंदी संस्मरण विधा का भी जन्म 'सुधा', 'सरस्वती', 'माधुरी', 'चाँद', 'विशाल भारत' आदि विविध पत्र-पत्रिकाओं से ही हुआ। अधिकांश विद्वानों ने पं. प्रतापनारायण मिश्र पर बाबू बालमुकुंद गुप्त के सन् 1907 ई. में लिखे गए संस्मरण को हिंदी का प्रथम संस्मरण माना है। वैसे कुछ लोग स्वामी सत्यदेव परिव्राजक को और कुछ पद्मसिंह शर्मा को हिंदी का प्रथम संस्मरण-लेखक मानते हैं।

हिंदी में संस्मरण लेखन की सुरुआत बीसवीं शताब्दी में हुई। महावीरप्रसाद द्विवेदी ने 'अनुमोदन का अंत' और 'सभा की सभ्यता' है जैसे संस्करण लिखे। तो बालमुकुंद गुप्त ने 'प्रतापनारायण मिश्र' संबंधित प्रसिद्ध संस्मरण लिखे। इस युग में 'सरस्वती' पत्रिका में ढेरों संस्मरण छपे जिसमें अनेक महत्त्वपूर्ण लेखकों के संस्मरण थे। यह स्वयं में एक बड़ी उपलब्धि थी। 'हंस' पत्रिका का प्रेमचंद स्मृति अंक भी संस्मरण साहित्य की धरोहर है। बनारसीदास चतुर्वेदी, कामताप्रसाद गुरु, वृंदावनलाल वर्मा आदि प्रमुख संस्मरण लेखक थे जिन्होंने अन्य लेखकों से संबंधित संस्मरण लिखे है।

संस्मरण लेखन में महादेवी वर्मा की भी एक महत्त्वपूर्ण भूमिका रही। 'अतीत के चल चित्र', 'स्मृति की रेखाएं' और 'पथ के साथी' रचना में उन्होंने रवींद्रनाथ ठाकुर, मैथिलीशरण गुप्त, सुभद्राकुमारी चौहान, प्रसाद, पंत और निराला पर संस्मरण लिखे है। राहुल सांकृत्यायन कृत 'बचपन की स्मृतियाँ', 'जिनका मैं

कृतज्ञ हूँ' तथा 'मेरे असहायोग के साथी' संस्मरण प्रमुख हैं. उपेन्द्रनाथ 'अश्क' की प्रसिद्ध पुस्तक 'मंटो मेरा दुश्मन' जिसमें उन्होंने मंटों के चरित्र को बड़ी ही कुशलता से रचा हैं।

सुप्रसिद्ध लेखक विष्णु प्रभाकर का संस्मरण लेखकों में महत्त्वपूर्ण स्थान है। घनश्यामदास बिड़ला ने 'गांधीजी की छत्रछाया' नामक पुस्तक लिखी जिसमें उन्होंने गांधीजी के संबंध में, उनके राजनीतिक और सामाजिक जीवन के विषय में लिखा। यह गांधीजी पर लिखा गया महत्त्वपूर्ण दस्तावेज है। बिड़ला, गांधीजी को बहुत करीब से जानते थे। एक जगह लिखते हैं कि ''वे जरा-जरा सी बात में व्यक्तिगत रूप से दिलचस्पी रखते थे ठीक वैसे ही जैसे कोई पिता अपने संतान के कार्यकलाप में रस लेता है। संस्मरणों के विकास में पदुमलाल पुन्नालाल बख्सी, जगदीशचंद्र माथुर शिवपूजन साहाय, रामधारी सिंह 'दिनकर', विष्णुकांत शास्त्री, रामदरश मिश्र आदि की भूमिका महत्त्वपूर्ण स्थान रखती है।

वर्तमान साहित्य लेखन में संस्मरण एक महत्त्वपूर्ण विधा के रूप में स्वीकार्य है। वर्तमान में संस्मरण लेखन का प्रचलन भी बढ़ा है। इस विधा में लेखन की प्रवृत्ति लगभग सभी रचनाकारो में देखी गयी है। कुछ चर्चित संस्मरणों का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार से है। विष्णु प्रभाकर कृत 'याद हो कि न याद हो', 'कुछ शब्द कुछ रेखाएँ', पंडित विद्यानिवास मिश्र अपने संस्मरणों में गाँव से लेकर गोरखपुर, दिल्ली और अमेरिका समेत कई-कई स्थानों की स्मृति को संजोते हैं। डॉ. रामदरश मिश्र के संस्मरण ग्रंथ है- 'स्मृतियों के छंद' 'अपने-अपने रास्ते' और 'एक दुनिया अपनी', कथाकार काशीनाथ सिंह- 'आछे दिन पाछे गये', 'रहना नहीं देश वीराना है', इक्कीसवीं सदी के देश का सफर', कृष्णा सोबती का 'हम हशमत' अपने ही ढंग की संस्मरणात्मक रचना है। पद्मा सचदेव का 'अमराई', बिंदु अग्रवाल- 'यादें और बातें', विश्वनाथ त्रिपाठी कृत 'गंगास्नान करने चलोगे' आदि संस्मरण साहित्य की महत्त्वपूर्ण कृतियाँ हैं।

2.3.3.2.2 जीवनी

कथेत्तर साहित्यिक विधाओं के अंतर्गत जीवनी लेखन का महत्त्वपूर्ण स्थान है। इसमें किसी व्यक्ति विशेष के बाह्य एवं आंतरिक जीवन का प्रकाशन होता है। इस विधा में राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक तथा साहित्यिक परिवेश से प्रभावित मनीषियों और कलाकारों का जीवन-वृत्त वर्णित होता है। अंग्रेजी में जीवनी को 'लाइफ' अथवा 'बायोग्राफी' कहा जाता है। हिंदी में जीवनी को जीवन चरित्र या जीवन चरित भी कहा जाता है। डॉ. रामचंद्र तिवारी के अनुसार- ''आधुनिक युग में वैज्ञानिक और बौद्धिक जीवन-दृष्टि के विकास के साथ ही जीवनी-साहित्य लिखने की परम्परा पल्लवित हुई और अब तो जीवनी-साहित्य हिंदी गद्य की एक पृथक विधा के रूप में मान्य है।''

हिंदी साहित्य में जीवनी लेखन नई विधा है। यद्यपि संस्कृत साहित्य में यह परंपरा काफी पहले से ही रही है। हर्षचरित्र, बुद्धचरित्र, दशचरित्र आदि जीवनचरित्र ही है। इन चरित्र लेखनों में राजा महाराजाओं के साथ-साथ महापुरुषों का जीवन केंद्र में होता था। जीवनी किसी भी व्यक्ति की लिखी जा सकती है। चाहे वह साधारण व्यक्ति ही क्यों ना हो लेकिन जीवनी-लेखन का एक उद्देश्य होना आवश्यक है। जीवनी पढ़कर हम व्यक्ति के व्यक्तित्त्व एवं कृतित्त्व के साथ-साथ उसके परिवेश और समाज तथा उसके जीवन से

जुड़े प्रेरक प्रसंगों एवं उसके रहन-सहन आदि से भी परिचित होते हैं। जीवनी-लेखन इसलिए भी महत्त्वपूर्ण है क्योंकि यह कल्पना नहीं बल्कि यथार्थ होता है। यह वास्तविक व्यक्ति के जीवन से जुड़ा दस्तावेज है इसलिए उस पर आधारित जानकारियों को स्वयं ही विश्वसनीय और प्रामाणिक माना जाता है. जीवनी-लेखक जिसकी जीवनी लिख रहा होता है उसके सभी पक्षों को एक साथ चित्रित करता है इसलिए इसमें गुणों और दोषों का समावेश होता है। डॉ रामविलास शर्मा 'निराला' की जीवनी लिखते समय उनकी अच्छाइयों के साथ उनके अटपटे व्यवहार को भी कुशलता से उकरते है।

हिंदी जीवनी-लेखन परंपरा भी भारतेंदु युग से ही मानी जाती है। इस युग में पौराणिक-ऐतिहासिक महापुरुषों, संतों, भक्तों, कवियों आदि की जीवनियाँ लिखी गयीं। यह वह समय था जब तमाम नवीन विधाओं ने जन्म लिया। भारतेंदु ने भी 'चरितावली', बादशाह-दर्पण', 'पंच पवित्रात्मा', और 'ऊतारार्ध भक्तमाल' आदि जीवनियाँ लिखी गयीं। यद्यपि भारतेंदु युग जीवनी-लेखन का शैशवकाल था फिर भी इस समय पर्याप्त मात्रा में जीवनियाँ लिखी गयीं। द्विवेदी युग में इसका विकास हुआ और स्वामी दयानंद सरस्वती, रामकृष्ण परमहंस, विवेकानंद, गांधीजी, मदनमोहन मालवीय, दादाभाई नौरोजी, अहिल्याबाई आदि की जीवनियाँ लिखी गयीं जो बहुत चर्चित हुई। लेकिन गांधीजी पर लिखी गई जीवनी या खासकर 'रोमा रोला' द्वारा लिखित एवं हिंदी में अनूदित 'महात्मा गांधी : विश्व के अद्वितीय पुरुष' बहुत चर्चित रही। द्विवेदी युग की समाप्ति के बाद और स्वतंत्रता प्राप्ति के पूर्व काल में चन्द्रशेखर आजाद, नेताजी सुभाष चन्द्र बोस, जयप्रकाश नारायण, मौलाना अबुल कलाम आजाद आदि पर जीवनियाँ लिखी गई है।

राहुल सांकृत्यायन का जीवनी साहित्य में महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। वे कई भाषाओं के ज्ञाता थे। उनका अनुभव क्षेत्र बहुत व्यापक था। उन्होंने अनेक देशों की यात्रा की थी और उनके लोगों से मिले थे। उन्होंने 'कार्ल मार्क्स', 'लेनिन', 'स्टालिन' आदि की जीवनियाँ लिखकर उन्हें भारतीय समाज से परिचित करवाया। शरतचंद्र चट्टोपाध्याय पर विष्णु प्रभाकर द्वारा लिखी गई 'आवारा मसीहा' 'कलम के सिपाही' (अमृतराय) 'प्रेमचंद घर में' (शिवरानी देवी) 'पहला गिरमिटिया' (गिरिराज किशोर) 'निराला की साहित्य साधना' (रामविलास शर्मा) आदि प्रसिद्ध जीवनियाँ हैं।

जीवनी-लेखन एक समृद्ध विधा के रूप में विकसित हो चुका है। सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, साहित्यिक, वैज्ञानिक, खेल एवं फिल्मी जीवन से संबंधित व्यक्तियों की जीवनियाँ लगातार लिखी जा रही है। इन जीवनियों के माध्यम से अलग-अलग क्षेत्रों से जुड़े व्यक्तियों के साथ हम उनके जीवन के अनछुए पहलुओं को जान पाते हैं। ये ऐतिहासिक दस्तावेज तो बनते ही हैं, हमें कुछ सीख भी दे जाते हैं। जीवनी पढ़ते हुए पाठक अनायास ही उस क्षेत्र में प्रवेश कर जाता है जहाँ से उसका संबंध दूर-दूर तक नहीं होता। वास्तव में जीवनी व्यक्ति, समाज, परिवेश और तत्कालीन समय को समझने की सर्वोत्तम विधा है।

2.3.3.2.3 आत्मकथा

'आत्मकथा' का शाब्दिक अर्थ है- 'अपनी कथा'। जिस विधा में लेखक स्वयं ही अपना जीवन-वृत्त प्रस्तुत करे, उसे 'आत्मकथा' कहते है। अर्थात् आत्मकथा ऐसी जीवन-कथा है, जो उसी व्यक्ति द्वारा

लिखी जाती है। 'आत्मकथा' को कुछ विद्वान् 'आत्मचरित' या 'आत्मचरित्र' भी कहते हैं। आत्मकथा, जीवनी एवं संस्मरण लगभग मिलती-जुलती विधाएँ हैं लेकिन इनमें सूक्ष्म भेद होने से पृथक विधाएँ हैं। 'जब कोई व्यक्ति अपनी कथा कहता है तो वह 'आत्मकथा' कहलाती है लेकिन जब कोई अन्य व्यक्ति किसी अन्य के विषय में लिखता है तो वह 'जीवनी' होती है। चूँकि जीवनी का लेखक कोई दूसरा होता है तो हो सकता है कि वह उतनी प्रामाणिक न हो जितनी आत्मकथा। आत्मकथा में रचनाकार अपने विषय में लिखता है इसलिए वह अपने विषय में जो कहेगा वह सत्य ही होगा ऐसा माना जा सकता है। आत्मकथा कभी भी पूर्ण नहीं होती क्योंकि आत्मकथा लेखक अपने अंतिम दिन का विवरण इसमें प्रस्तुत नही कर सकता जब कि जीवनी जन्म से लेकर मृत्यु तक का विवरण है। आत्मकथा लेखन कठीन कार्य है इसमें साहस एवं सत्यनिष्ठा की आवश्यकता होती है। आत्मकथा लेखक जब स्वयं को आलोचनात्मक नजरिए से देखेगा तभी सत्य विवरण दे सकेगा। इसमें लेखक को तटस्थ होना पडेगा। अपनी सफलता-असफलता, गुण-दोष, कमजोरी व मजबूत पक्ष को पाठकों के समक्ष प्रस्तुत कर पाना सरल कार्य नही है।

गांधीजी की आत्मकथा 'सत्य के साथ मेरे प्रयोग' में गांधीजी अपनी कमजोर वासनात्मक वृत्तियों की चर्चा भी करते हैं और स्वयं को धिक्कारते भी हैं। जीवन की दुर्बलता, सबलता और विषमता का अच्छा उदाहरण है 'सत्य के साथ मेरे प्रयोग'। बाबू राजेंद्र प्रसाद श्रेणीबद्ध तरीके से अपनी आत्मकथा लिखते हैं उस समय की घटनाओं और आंदोलन आदि में अपनी सहभागिता के विषय में बताते है। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी जी ने अपनी जीवनगाथा में बड़ी बेबाकी से अपने जीवन की व्यक्तिगत बातें लिखी हैं। आत्मकथा लिखने की शर्त ही यह है कि लेखक अतीत की स्मृतियों को याद करते है बड़ी तटस्थता और इमानदारी के साथ घटनाओं को लिपिबद्ध करे तभी वह प्रामाणिक होगी। आत्मकथा ऐसी साहित्यिक विधा है जिसमें पाठक सीखता चलता है इसलिए इसमें मूल्यों का होना भी आवश्यक है।

यदि देखा जाये तो पहले आत्मकथा 'बाबरनामा' को कहा जा सकता है किंतु यह हिंदी भाषा में नही लिखी गई। इसका हिंदी अनुवाद बाद में हुआ। हिंदी की पहली आत्मकथा बनारसीदास कृत 'अर्धकथानक' को माना जाता है। 'आत्मकथा' एक महत्त्वपूर्ण विधा है क्योंकि इसको सच्चा दस्तावेज माना जा सकता है और जब लेखक इसे स्वयं ही लिख रहा है तो इसमें अधिक प्रामाणिक भला और क्या हो सकता है। भगवतीचरण वर्मा कहते हैं- 'अपनी कहानी कहते समय सत्य को दबाने और झूठ को उभारने की प्रवृत्ति मनुष्य में अक्सर आ जाया करती है। लेकिन उन्होंने अपनी आत्मकथा में अपने संघर्षों, अभावों और सफलताओं को बड़ी सच्चाई के साथ स्वीकारा है। जबकि प्रेमचंद ने 'हंस' का जो आत्मकथा विशेषांक निकाला वह उतना सफल नहीं हो सका था क्योंकि रचनाकार अपनी छवि के प्रति सचेत रहे और उतना साहस नहीं दिखा पाये जितना एक आत्मकथा लेखक से अपेक्षित होता है।

प्रसिद्ध साहित्यकार विष्णू प्रभाकर जी आत्मकथा 'पंखहीन', 'मुक्त गगन में', 'और पंछी उड़ गया' आदि तीन खण्डों में प्रकाशित हुई है जिसमें उन्होंने अपनी जिंदगी के उतार-चढ़ाव के साथ-साथ भारतीय समाज और हिंदी साहित्य में आये परिवर्तनों के बारे में भी लिखा है। हरिवंशराय बच्चन की आत्मकथा ''क्या भूलू क्या याद करू', नीड़ का निर्माण फिर', 'बसेरे से दूर' और 'दशद्वार से सोपान तक' इन चार

खण्डों में प्रकाशित हुई है इसमें उन्होंने अपने मानसिक संघर्षों एवं भौतिक जीवन का तथ्यात्मक ब्यौरा दिया है। इसी प्रकार कमलेश्वर की आत्मकथा तीन खण्डों में प्रकाशित है जिसमें उन्होंने अपने व्यापक जीवनानुभवों की जानकारी दी है। उन्होंने अपने राजनीतिक जीवन से लेकर निजी जीवन, दूरदर्शन, फिल्म जगत, पत्रकारिता एवं लेखकीय जीवन आदि को सच्चाई के साथ उकेरा है।

किसी की आत्मकथा पढ़ते समय हम उस समय की सांस्कृतिक, साहित्यिक और लेखक से जुड़ी परिस्थितियों से परिचित होने के साथ ही उसके संसार में प्रवेश कर जाते है। दलित लेखक सूरजपाल चौहान का 'तिरस्कार' और 'संतप्त' में दलित मानसिकता से साक्षात्कार करते है उच्च दलित वर्ग के बीच की दूरी को दिखाते हुए सूरजपाल सामाजिक, आर्थिक और धार्मिक स्थिति का लेखा-जोखा प्रस्तुत करते हैं. ओमप्रकाश वाल्मीकि की 'जूठन', मोहनदास नैमिशराय की 'अपने-अपने पिंजरे' भाग-1 और 2, श्यौराजसिंह बैचेन की 'मेरा बचपन मेरे कन्धों पर,' कौशल्या बैसंत्री की 'दोहरा अभिशाप', सुशीला टाकभौरे कि 'शिकंजे का दर्द' आदि ने दलित जीवन की पीड़ाओं को उजागर किया है। आत्मकथाओं में एक युग की आवाज होती है और इनके पठन से हम उससे रूबरू होते है। दरअसल आत्मकथा एक सांस्कृतिक इतिहास है जिसके माध्यम से पाठक उस काल को समझ पाता है। आत्मकथाकार चाहे अपने बारे में ही बोल रहा हो लेकिन इतिहास, अनुभव, मनोरंजन, जानकारियां और संवेदनाएँ उसमें भी अंतर्निहित होती हैं. जिनसे पाठक स्वतः ही एक तादात्म्य स्थापित कर लेता है।

2.3.4 नवाचार : साहित्य में नवाचार

'नवाचार' से अभिप्राय है- 'नवीन प्रयोग'। साहित्य में समय-समय पर नए प्रयोग होते रहे है। भारतेंदु काल नवाचारों का युग कहा जा सकता है। साहित्य में नयी-नयी विधाओं ने जन्म लिया। कुछ पुरानी विधाएँ नये कलेवर के साथ साहित्य में उतरी और पुष्पित-पल्लवित हुई। उसके बाद से ही साहित्य में निरंतर प्रयोग होते रहे। नयी कहानी, नई कविता आदि का दौर शुरू हुआ। नवीन शिल्प और वर्ण्यविषय यहाँ तक कि लेखन की भाषा में भी बदलाव आया। विवादों और तर्कों का वातावरण बना लेकिन इन सबने मिलकर साहित्य को समृद्ध ही किया।

इसी समय साहित्य में नयी कथेत्तर विधाओं ने जन्म लिया। इंटरनेट के आधुनिक युग में तो साहित्य सहजता से सबको हासिल होने लगा है। गद्य-गीत, लघुकथा, नयी कहानी के साथ-साथ इससे इतर विधाएँ आयी जिनमें डायरी, यात्रा-वृत्तांत, रिपोर्ताज, पत्र, साक्षात्कार आदि प्रमुख हैं। केरी केचर और एकालाप लेखन को भी नवाचार कहा जाएगा। यद्यपि ये अधिकता से नहीं लिखे गये लेकिन फिर भी साहित्य में यह प्रयोग हुआ है। लेखकों ने अपनी अभिव्यक्ति को आकार देने के लिए इस तरह की विधाओं का सहारा लिया या इन विधाओं का अविष्कार किया। साहित्य जगत में इनको स्वीकृति मिलती चली गयी। ऐसा भी होता है कि कभी-कभी तो लेखक लिखता चला जाता है जिसमें वह अपने अनुभव, पीड़ा, सामाजिक पीड़ा, विसंगतियाँ, नैतिकता, मूल्य आदि अनेक विषयों को समेंटता चलता है लेकिन अपने लेखन को किसी भी विधा के अंतर्गत नहीं रख पाता। चंद्रिकाप्रसाद शर्मा अपनी चार पुस्तकों

(आँचलिक रेखाचित्र', 'साहित्य निर्माताओं के गाँव', 'धूल भरे हीरे' और संस्कृति के प्रहरी) के विषय में स्वयं भी कहते है- ''अपने इन लेखों को फीचर्स कहूँ, शब्दचित्र कहूँ, चित्र निबंध कहूँ या विचित्र निबंध कहूँ मैं समझ नहीं पा रहा हूँ कि क्या कहूँ। पाठक जो नाम देना चाहे दे दे।'' दरअसल साहित्य की लगभग सभी विधाओं के बीच एक बड़ी महीन-सी रेखा है जो इन विधाओं को पृथक करती है लेकिन एक दूसरे में इनकी आवाजाही निरंतर बने रहने की गुंजाइश रहती है। लेखक किसी एक विधा में नहीं लिखता है बल्कि वह अपने अभिव्यक्ति को रूप देता चलता है। विधाओं को शृंखलाबद्ध करने वाला लेखक ही है। यहाँ हम कुछ नवाचारों के विषय में संक्षिप्त जानकारी प्राप्त करेंगे।

2.3.2.1 रिपोर्ताज

फ्रेंच से आये इस 'रिपोर्ताज' को हिंदी साहित्य में नवाचार के रूप में देखा जा सकता है। आधुनिक हिंदी साहित्य में 'रिपोर्ताज' को स्वतंत्र विधा के रूप में स्वीकारा गया है। 'रिपोर्ताज' सामायिक आवश्यकता का परिणाम है। इसका आविर्भाव प्रथम विश्व-युद्ध के समय हो चूका था। द्वितीय महायुद्ध के दौरान इसका व्यापक प्रचार-प्रसार हुआ। लेकिन डॉ. हरदयाल का मानना है कि- 'रिपोर्ताज' का जन्म द्वितीय विश्व युद्ध के समय ही हुआ। उन्हीं के शब्दों में, ''रिपोर्ताज' का जन्म द्वितीय विश्व युद्ध के समय ही हुआ। जब साहित्यकारों ने युद्ध-भूमि के दृश्यों और घटनाओं की रिपोर्ट समाचारपत्रों में दी। इन रिपोर्टों में पेशेवर पत्रकारों की रिपोर्ट से स्वाभाविक भिन्नता आ गयी थी। यह भिन्नता इनकी साहित्यिकता-कलात्मकता और उस उत्साह में थी जो युद्ध-भूमि पर उपस्थित साहित्यकार-सैनिकों के हृदय में विद्यमान था। इस प्रकार अनायास ही रिपोर्ताज का जन्म हो गया।'' सुश्री महादेवी वर्मा का भी यही कहना है कि- ''रिपोर्ट या विवरण से सम्बन्ध रिपोर्ताज समाचार-युग की देन है और उसका जन्म सैनिक की खाइयों में हुआ है।''

'रिपोर्ताज' 'रिपोर्ट' का ही विस्तृत रूप है। 'रिपोर्ताज' मूलत: फ्रेंच (फ्रांसीसी) भाषा का शब्द है। इसके पर्याय रूप में अंग्रेजी शब्द 'रिपोर्ट' के माध्यम से आया है। 'रिपोर्ट' का साहित्यिक रूप ही 'रिपोर्ताज' है। हिंदी में 'रिपोर्ताज' को 'सूचनिका', 'रुपनिका' और 'वृत्त-निवेशन' भी कहते है। 'रिपोर्ट' में बात या घटना को ज्यों का त्यों रख दिया जाता है जबकि रिपोर्ताज में थोड़े रोचक विश्लेषण के साथ विस्तार किया जाता है। उसमें उत्पन्न रोचकता के कारण व पठनीय हो जाता है। कोई भी रिपोर्ताज घटना स्थल पर उपस्थित हुए बगैर नहीं लिखा जा सकता। क्योंकि कहीं से सुनकर लिखे गये ब्यौरे में न ही विश्वसनीयता रहेगी और न ही प्रत्यक्ष दर्शन का आनंद। रिपोर्ताज तभी प्रभावी होता है जब रचनाकार घटना का प्रत्यक्षदर्शी हो और अपनी संवेदनाओं को उसमें जोड़ पाए। धर्मवीर भारती, फणीश्वरनाथ रेणु आदि रचनाकारों ने घटना स्थल पर जाकर उन तथ्यों घटनाओं से स्वयं को जोड़ा और विशिष्ट कृतियों का सृजन किया। हिंदी में शिवदान सिंह चौहान कृत- 'मौत के खिलाफ जिंदगी की लड़ाई' शीर्षक पहला रिपोर्ताज 'हंस' में प्रकाशित हुआ। डॉ. रांगेय राघव ने 'अदम्य जीवन' शीर्षक से दूसरा रिपोर्ताज लिखा। 'तूफानों के बीच' इस रांगेय राघव के रिपोर्ताज में बंगाल के दुर्भिक व महामारी के बारे में लिखे गये अनेक रिपोर्ताज

काफी मार्मिक बन पड़े है। इसके अतिरिक्त 'यह है ग्वालियर' में सांप्रदायिक दंगों, दमन, शोषण, अत्याचार एवं हृदय-हीनता का द्रावक चित्रण मिलता है।

'रिपोर्ताज' में अकाल, प्राकृतिक आपदाएँ, क्रांति आंदोलन और युद्ध आदि महत्त्वपूर्ण घटनाओं को लिखा जाता रहा है। धर्मवीर भारती के रिपोर्ताज 'युद्धयात्रा' में बांग्लादेश के युद्ध से संबंधित रिपोर्ताज संकलित है जिनको उन्होंने स्वयं युद्ध के समय बांग्लादेश जाकर लिखा था, फणीश्वरनाथ रेणु का 'ऋणजल धनजल' भी इस तरह लिखा गया है जिसमें उन्होंने सन् 1966 ई. के बिहार के सूखे और पोलीस सन् 1967 की विनाशकारी बाढ़ का सजीव चित्रण किया गया है।

वास्तव में रिपोर्ताज पत्रकारिता से संबंधित विधा है। लेकिन यह अल्पजीवी विधा नहीं है क्योंकि इसमें 'रिपोर्टर' रचनाकार बन जाता है और इसमें जानकारियों के साथ लालित्य उत्पन्न कर उसे साहित्य की विधा बना देता है। रिपोर्ताज देखा और भोगा हुआ यथार्थ है जिसमें लेखक की संवेदनाएँ भी शामिल रहती हैं। हिंदी साहित्य में रिपोर्ताज विधा में निरंतर लेखन कार्य किया जा रहा है।

2.3.4.2 डायरी

'डायरी' आधुनिक हिंदी साहित्य की नवीन विधा हैं। डायरी यों तो किसी व्यक्ति की नितांत वैयक्तिक सम्पत्ति होती है किन्तु प्रकाश में आने के बाद अपनी सार्वजनिक एवं सार्वकालिक भावनाओं के कारण साहित्य जगत् की संपत्ति बन जाती है। 'डायरी' अंग्रेजी का शब्द है। यह लैटिन भाषा के 'डायस' से बना है। संस्कृत के 'दिवस' शब्द का समानार्थक है। डायरी के पर्यायवाची शब्द 'दैनिकी', 'रोजनामचा', 'दैनन्दिनी' आदि है। इसमें तिथिवार दैनिक जीवन की महत्त्वपूर्ण घटनाएँ अंकित कि जाती हैं। डायरी के व्यक्ति निष्ठ और वस्तुनिष्ठ यह दो रूप है। जब डायरी किसी महत्त्वपूर्ण व्यक्ति के व्यक्तित्त्व का उद्घाटन करती है तो 'व्यक्ति निष्ठ' कहलाती है। जब वह किसी कालखण्ड अथवा मानव-समाज के किसी वर्ग विशेष का धोतन करती है तो 'वस्तुनिष्ठ' कहलाती है। व्यंजना, व्यंग्य और वर्णन-सजीवता यह डायरी लेखन के मुख्य तत्त्व माने गये हैं।

यूरोप में डायरी साहित्य-लेखन काफी पहले से प्रचलित था। वास्तव में डायरी नितांत व्यक्तिगत होती है जिसमें लेखक अपने रोजमर्रा के सुख-दुःख, जीवन अनुभव और घटनाओं आदि का उल्लेख करता है। जिनको वह सार्वजनिक नहीं करना चाहता। हो सकता है कि डायरी में लेखक ने बहुत-सी अप्रिय या दूसरों के हृदय को दुखी करने वाले भी प्रसंग लिखे हों। डायरी में लेखक द्वारा दिये गये लेखे-जोखे के साथ अधिकतर स्थान एवं दिन भी अंकित रहता है जो इसे विश्वसनीय बनाता है। यद्यपि डायरी में आत्मलेखन होता है लेकिन फिर भी उस काल की परिस्थितियों, अभिरुचियों, जीवन-चर्या आदि की जानकारी इसमें समाहित होती है जैसे मोहन राकेश की डायरी में उनके अंतर्द्वंद्व है लेकिन तत्कालीन साहित्यिक परिस्थितियों की झलक भी इसमें अंतर्निहित है।

धीरेंद्र वर्मा की 'मेरी कॉलेज डायरी' चार खण्डों में विभाजित है जिसमें लेखक के व्यक्तिगत जीवन अनुभवों के अतिरिक्त उस समय स्वतंत्रता के लिये हो रहे आंदोलन की ध्वनि भी सुनाई पड़ती है।

सुन्दरलाल त्रिपाठी की 'दैनन्दिनी', सियारामशरण गुप्त की 'दैनिकी' इस विधा की महत्त्वपूर्ण रचनाएँ हैं। 'दिनकर की डायरी' में साहित्यिक और सामाजिक दोनों ही तरह के संदर्भ मिलते हैं। साहित्य के साथ-साथ राजनीतिक परिवेश में भी दिनकर की अच्छी खासी घुसपैठ थी। राजनेताओं और साहित्यकारों दोनों से ही उनका मेल-जोल रहा था इसलिए उनकी डायरी में दोनों पृष्ठभूमियों का होना स्वाभाविक है।

हरिवंशराय बच्चन की सन् 1971 ई. में 'प्रवास की डायरी' नाम से प्रकाशित हुई। इसमें उन्होंने अपने इंग्लंड प्रवास के दौरान डायरी लिखी, जिसमें उन्होंने वहाँ के जीवन, इंग्लैंड विश्वविद्यालय की गतिविधियों, अंग्रेजी साहित्य एवं वहाँ की साहित्यिक गतिविधियों का वर्णन किया है। रघुवीर सहाय- 'दिल्ली मेरा परदेश', गजानन माधव मुक्तिबोध की 'एक साहित्यिक की डायरी', इलाचंद्र जोशी की 'मेरी डायरी के नीरस पृष्ठ', मोहन राकेश कृत 'मोहन राकेश की डायरी' आदि ने डायरी-लेखनकला के विकास में योगदान दिया है। साहित्यकारों के अतिरिक्त जमनालाल बजाज कृत- 'जमनालाल की डायरी', शांताकुमार कृत- 'एक मुख्यमंत्री की डायरी', जयप्रकाश नारायण कृत- 'मेरी जेल-डायरी' आदि राजनेताओं द्वारा लिखित डायरियाँ उल्लेखनीय हैं।

2.3.4.3 साक्षात्कार (इन्टरव्यू)

गद्य की नव्यतम विधाओं में 'इंटरव्यू' भी पश्चिम की देन है। यह अभिनव गद्य-विधा मूलत: पत्रकारिता से सम्बन्धित है। इसमें कला, साहित्य, राजनीति, दर्शन, अध्यात्म, विज्ञान आदि किसी भी क्षेत्र की महान और मान्य विभूतियों से मिलकर किन्हीं प्रश्नों के संदर्भ में उनके विचार या दृष्टिकोन जानने और उन्हें उसी की शैली, भाषा और भंगिमा में व्यक्त करने की चेष्टा कि जाती है। हिंदी में इस विधा के लिए साक्षात्कार, भेंटवार्ता, भेंट, विशेष चर्चा आदि समानार्थक शब्द प्रयुक्त होते हैं, पर इन पर्यायवाची शब्दों की तुलना में 'इण्टरव्यू' शब्द ही हिंदी में अधिक प्रचलित है।

डॉ. रामप्रकाश के मतानुसार ''विभिन्न धार्मिक, महापुरुषों, राजनीतिक नेताओं, उच्च कोटि के सामाजिक या साहित्यिक व्यक्तियों के विचार जानने और उन्हें सर्वसाधारण तक पहुँचाने के लिए प्राय: पत्र-प्रतिनिधि उनसे भेंट करके अभीष्ट विषय या समस्या पर वार्ता करते हैं और उस वार्ता के निष्कर्षों को साहित्यिक शैली में प्रस्तुत करके पाठकों के सामने प्रस्तुत कर देते है। ऐसी रचनाएँ भेंटवार्ता ('इण्टरव्यू') कहलाती है।'' इंटरव्यू उन विशिष्ठ एवं ख्याति प्राप्त व्यक्तियों का लिया जाता है जिसके विचारों को जानने की जन साधारण के हृदय में सहज जिज्ञासा होती है जिसमें एक जिज्ञासु व्यक्ति जीवन की किसी क्षेत्र में विद्यमान अन्य किसी विशेषकर प्रख्यात और महत्वपूर्ण व्यक्ति से प्रत्यक्ष मिलकर उसके बारें में सीधे-सीधे जानकारी प्राप्त करता हैं।

हिंदी 'इंटरव्यू' विधा के सूत्रपात का श्रेय पं. बनारसीदास चतुर्वेदी को है। 'विशाल भारत' में 'रत्नाकर जी से बातचीत', और 'प्रेमचन्द जी के साथ दो दिन' इस दिशा में उनकी उल्लेखनीय रचनाएँ है। इंटरव्यू विधा पर पुस्तकाकार प्रकाशित सर्वप्रथम एवं सबसे महत्त्वपूर्ण डॉ. पद्म सिंह शर्मा 'कमलेश' की 'मैं इनसे मिला' दो भागों में हुई। इसमें कुल मिलाकर 22 व्यक्तियों के इंटरव्यू हैं। इस रचना एवं विशेषताओं के

संदर्भ में उन्होंने लिखा है– ''इन भेंट वार्ताओं का कनवैस बड़ा व्यापक है। कृतिकार की रचनाओं तक ही सीमित न रहकर ये उनके जीवन के विविध पक्षों अर्थात रूचि स्वभाव, रहन–सहन को समझने में सहायता मिलती है। साहित्यकारों के जीवन की अनेक रोचक घटनाओं के वर्णन में इनका ऐतिहासिक महत्त्व भी बढ़ गया है। हिंदी जगत में इस ग्रंथ को खूब सहारा गया है।

श्री देवेन्द्र विद्यार्थी की 'कला के हस्ताक्षर' भी इंटरव्यू साहित्य की पुस्तकाकार कृति है जिसमें संगीतकार, चित्रकार, अभिनेता आदि कला मर्मज्ञों के इंटरव्यू वर्णित हैं। कैलाश कल्पित की साहित्य साधिकाएँ; शरद देवडी की पत्थर का लैम्प तथा डॉ. रणवीर रोग्रा की 'सृजन की मनोभूमि' इस संदर्भ में उल्लेखनीय कृतियाँ है। राजेन्द्र यादव ने रुसी उपन्यासकार चेखव के साथ अपनी काल्पनिक भेंट का सजीव और रोचक वर्णन किया है। अमीचंद जैन में भगवान महावीर 'एक इंटरव्यू' के नाम से काल्पनिक इंटरव्यू लिखा है। निश्चित ही इस विधा के भविष्य में और अधिक विकसित और कलापूर्ण बनने का पूरी संभावना है।

निष्कर्ष : इसमें हमने कथेत्तर साहित्य के साथ साहित्य में हुए नवाचारों के विषय में जानकारी देख ली। इसके द्वारा संस्मरण, जीवनी और आत्मकथा आदि के विषय में और नवाचार जैसे– रिपोर्ताज, डायरी और साक्षात्कार आदि विषय में विस्तार से जानकारी प्राप्त की।

2.4 स्वयं अध्ययन के प्रश्न

अ) निम्नलिखित वाक्यों के नीचे दिए गए विकल्पों में से उचित विकल्प चुनकर वाक्य फिर से लिखिए।

1) पॉपुलर साहित्य आशय .... पर उपलब्ध साहित्य से है।

क) मोबाईल ख) किताब ग) इंटरनेट घ) कंप्यूटर

2) देवकीनंदन खत्री के .... उपन्यास पढ़ने के लिए लोगों ने हिंदी सीखी।

क) चंद्रकांता ख) चंद्रकांता संतती ग) कुसुम कुमारी घ) भूतनाथ

3) जो साहित्य व्यापक जनसमुदाय के बीच सहज रूप में ग्राह्य और स्वीकार्य हो, वह .... साहित्य है।

क) कथेत्तर ख) कथात्मक ग) लोकप्रिय घ) पॉपुलर

4) लप्रेक का अर्थ .... है।

क) लक प्रेमी कथा ख) लोकप्रिय कथा ग) लघु प्रेम कथा घ) प्रेम कथा

5) लप्रेक साहित्य की पहली रचना है– ....

क) इश्क में माटी सोना ख) इश्क कोई न्यूज नहीं

ग) इश्क में शहर होना घ) इश्क में मर जावा

6) 'संभावना डॉट कॉम कविता संग्रह में .... कवि पेशे से इंजीनियर, मेधावी छात्र, और पत्रकार हैं।

क) पैंतीस ख) चालीस ग) अड़तीस घ) छत्तीस

7) यूनीकोड से जोड़कर जो कविता लिखी गई, उसे .... कहते हैं।

क) यूनिटी कविता ख) यूनियन कविता ग) यूनिक कविता घ) यूनी कविता

8) नवाचार से अभिप्राय है- .... ।

क) नए प्रयास ख) नवीन प्रयोग ग) नयी विधा घ) नवा आचार

9) कृष्णा सोबती का .... अपने ही ढंग की संस्मरणात्मक रचना है।

क) अमराई ख) हम हशमत ग) यादें और बातें घ) अपने-अपने रस्ते

10) जब कोई व्यक्ति अपनी कथा कहता है तो वह आत्मकथा कहलाती है लेकिन जब कोई अन्य व्यक्ति किसी अन्य के विषय में लिखता है तो वह .... होती है।

क) आत्मचरित ख) आत्मचित्रण ग) जीवनी घ) रेखाचित्र

11) 'सत्य के मेरे प्रयोग' यह आत्मकथा .... की है।

क) सुभाष चन्द्र बोस ख) महात्मा गांधीजी

ग) जयप्रकाश नारायण घ) लोकमान्य तिलक

12) धीरेन्द्र वर्मा की .... चार खण्डों में विभाजित है।

क) मेरी कॉलेज डायरी ख) मेरे कॉलेज के दिन

ग) मेरी जेल यात्रा घ) मेरी जीवन यात्रा

ब) उचित मिलान कीजिए।

i)

सूची -1	सूची-2
1. रवीश कुमार	अ. इश्क कोई न्यूज नहीं
2. विनीत कुमार	ब. इश्क में शहर होना
3. निलेश मिश्रा	क. इश्क में माटी सोना
4. गिरीन्द्रनाथ झा	ड. यादों का शहर

A. 1- अ, 2- ब 3- क 4- ड

B. 1- ड 2- क 3- ब 4- अ

C. 1- ब 2- अ 3- ड 4- क

D. 1- क 2- ड 3- अ 4- ब

ii) सूची -1 सूची-2

सूची -1	सूची-2
1. लप्रेक	अ. लघु प्रेम कथा
2. यूनी कविता	ब. यूनीकोड से जोड़कर लिखी कविता
3. नवाचार	क. नवीन प्रयोग
4. फलक	ड. फेसबुक लघु कथा

A. 1- अ, 2- ब 3- क 4- ड

B. 1- ड 2- क 3- ब 4- अ

C. 1- ब 2- अ 3- ड 4- क

D. 1- क 2- ड 3- अ 4- ब

iii) सूची -1 सूची-2

सूची -1	सूची-2
1. आवारा मसीहा	अ. गिरिराज किशोर
2. कलम के सिपाही	ब. शिवरानी देवी
3. प्रेमचंद घर में	क. अमृत राय
4. पहला गिरमिटिया	ड. विष्णु प्रभाकर

A. 1- अ, 2- ब 3- क 4- ड

B. 1- ड 2- क 3- ब 4- अ

C. 1- ब 2- अ 3- ड 4- क

D. 1- क 2- ड 3- अ 4- ब

iv) सूची -1 सूची-2

सूची -1	सूची-2
1. धर्मवीर भारती	अ. अदम्य जीवन

2. फणीश्वरनाथ रेणु ब. चक्कर क्लब

3. डॉ रांगेय राघव क. युद्ध यात्रा

4. यशपाल ड. ऋणजल नजल’

A. 1- अ, 2- ब 3- क 4- ड

B. 1- ड 2- क 3- ब 4- अ

C. 1- ब 2- अ 3- ड 4- क

D. 1- क 2- ड 3- अ 4- ब

क) सही गलत का निर्णय कीजिए।

1. नीचे दो कथन दिए गए है;

कथन 1- कभी-कभी भड़ास निकालने वाला लेखन भी सोशल मीडिया पर खूब दिखाई देता है।

कथन 2- सोशल मीडिया के फेसबुक जैसे माध्यम हिंदी में एक नये परिसर का निर्माण कर रहे हैं।

अ. कथन 1 और कथन 2 सही है।

ब. कथन 1 और कथन 2 गलत है।

क. कथन 1 सही है, लेकिन कथन 2 गलत है।

ड. कथन 1 गलत है, लेकिन कथन 2 सही है।

2. नीचे दो कथन दिए गए है;

कथन 1- पॉपुलर साहित्य के लेखक मीडिया, मैनेजमेंट, इंजीनियरिंग वगैरह दुनिया से आए हैं।

कथन 2- पॉपुलर साहित्य का आशय इंटरनेट पर उपलब्ध साहित्य से नहीं हैं।

अ. कथन 1 और कथन 2 सही है।

ब. कथन 1 और कथन 2 गलत है।

क. कथन 1 सही है, लेकिन कथन 2 गलत है।

ड. कथन 1 गलत है, लेकिन कथन 2 सही है।

3. नीचे दो कथन दिए गए है;

कथन 1– लप्रेक की शुरुवात प्राचीन काल से हुई है।

कथन 2– 'संभावना डॉट कॉम' कविता संग्रह में यूनी कविताओं का संकलन किया गया हैं।

अ. कथन 1 और कथन 2 सही है।

ब. कथन 1 और कथन 2 गलत है।

क. कथन 1 सही है, लेकिन कथन 2 गलत है।

ड. कथन 1 गलत है, लेकिन कथन 2 सही है।

4. नीचे दो कथन दिए गए है;

कथन 1 जब कोई व्यक्ति अपनी कथा कहता है तो वह जीवनी कहलाती है।

कथन 2 जब कोई अन्य व्यक्ति किसी के विषय में लिखता है तो वह आत्मकथा कहलाती है।

अ. कथन 1 और कथन 2 सही है।

ब. कथन 1 और कथन 2 गलत है।

क. कथन 1 सही है, लेकिन कथन 2 गलत है।

ड. कथन 1 गलत है, लेकिन कथन 2 सही है।

2.5 पारिभाषिक शब्द, संदर्भ, टिप्पणियाँ

ब्लॉग : चिट्ठा

पॉपुलर : लोकप्रिय, जनप्रिय, सर्वप्रिय

यूनीकोड : यूनिकोड एक तरह का हिंदी फॉण्ट है, जिसे कम्प्यूटर पर रोमन में टाईप कर हिंदी देवनागरी में लिखा जाता है।

रिसाइकल बिन : विंडोस ऑप्रेटिंग सिस्टम का एक विशेष फोल्डर होता है जिसकी सहायता से अपनी डिलीट की हुई फ़ाइल् तथा फोल्डर को सरलता से बचा सकते है।

स्पैम : जंक मेल।

नवाचार : नवीन प्रयोग।

लप्रेक : लघु प्रेम कथा।

फलक : फेसबुक लघु कथा।

2.6 स्वयं अध्ययन के प्रश्नों के उत्तर

उत्तर 1)

1. ग) इंटरनेट, 2. क) चन्द्रकान्ता,

3. घ) पॉपुलर, 4. ग) लघु प्रेम कथा

5. ग) इश्क में शहर होना, 6. ग) अड़तीस,

7. घ) यूनी कविता, 8. ख) नवीन प्रयोग,

9. ख) हम हशमत, 10. ग) जीवनी

11. ख) महात्मा गांधीजी 12. क) मेरी कॉलेज डायरी

2. 1. C, 2. A, 3. B, 4. D.

3. 1.अ, 2.क, 3. ड, 4. ब

2.7 सारांश

पॉपुलर साहित्य वही है, जो साहित्य व्यापक जनसमुदाय के बीच सहज रुप में ग्राह्य और स्वीकार्य हो। सरलता, सहजता और सुबोधता आदि ऐसे साहित्य के गुण हैं। वही साहित्य व्यापक जनता में लोकप्रिय होता है, जिसमें जन-जीवन की वास्तविकताएँ और आकांक्षाएँ सहज-सुबोध रुप में व्यक्त होती है। पॉपुलर साहित्य के लेखक मीडिया, मैनेजेमेंट, इंजीनियरिंग वगैरह दुनिया से आए हैं। हिंदी में पॉपुलर साहित्य का जो स्पेस बढ़ रहा है, उससे हिंदी का ही विस्तार हो रहा है।

हिंदी सृजनात्मक लेखन में नवाचार में लप्रेक और यूनी कविता बेहद पॉपुलर हैं। लप्रेक शृंखला में अब तक तीन रचनाएँ प्रकाशित हुई हैं। तीनों में लगभग समान समय में मगर अलग-अलग निगाह से प्रेम को देखा, समझा और परखा गया है। मगर तीनों लप्रेक प्रेम के भिन्न दृष्टिकोन से दर्शाते हैं। उसी तरह यूनीकोड से जोड़कर देवनागरी में इंटरनेट पर लिखी जाने वाली यूनी कविता बेहद पॉपुलर हुई है। इंटरनेटीय साहित्य में इनकी अवस्था अभी अधिकतक 5-6 वर्ष ही हुई है। लेकिन साहित्य की दुनिया में इनकी दस्तक धमाकेदार रूप में हुई है। साहित्य में ऐसा धमाका कभी नहीं देखा गया। आज यह साहित्य आम जन-जीवन तक कम्प्यूटर, मोबाईल, टेबलेट आदि इलेक्ट्रानिक्स माध्यमों से पहुँच रहा है। ख़ासतौर पर ऐसे समय में, जब मनुष्य लगातार सम्वेदनहीनता की ओर बढ़ता जा रहा है।

लप्रेक का अर्थ है- लघु प्रेम कथा। लप्रेक किस्सागोई का नैनो संस्करण है। जहाँ चन्द शब्दावली में कहानी गढ़ी जाती है। यहाँ कहानियाँ नैनों हैं, न्यून नहीं। दरअसल 'लप्रेक' की शुरुवात फेसबुक से हुई थी और रवीश कुमार इसके अगुआ थे। तब धीरे-धीरे बहुत से लोग इस विधा में सामने आने लगे।

'संभावना डॉट काम' कविता संग्रह में यूनी कविताओं का संकलन किया गया है। इसमें प्रस्तुत अड़तीस कवि जो पेशे से इंजीनियर मेधावी छात्र एयर पत्रकार हैं। यूनी कवि तर्कशील और नई सोच के पैरोकार कवियों की रचनाएँ साहित्य को और उर्वर करने वाले हैं। यूनी कविताएँ हिंदी की डिजिटल परम्परा का करीब से परिचय कराती है।

कविता का संवेदना से सीधा रिश्ता होता है। कविता के लिए पत्रिकाओं में और लोगों के दिलों में लगातार कम होता स्थान कहीं-न-कहीं संवेदनहीन होते समाज का संकेत है। इसे खतरे की घंटी के रूप में देखना होगा। मानवीय संवेदनाओं के बीज कविताओं की फसल बनकर लहलहाते हैं। बाजार का शिकार मनुष्य दिनोंदिन ऊसर में तब्दील होते जा रहा है। ऐसे में ये यूनी कवि खेतों में खाद-पानी देने का प्रयास कर रहे हैं, जहाँ संवेदना की फसल उग सकती है।

कथेत्तर साहित्य में संस्मरण भी एक आकर्षक एवं आत्मनिष्ठ आधुनिकतम विधा है। संस्मरणकार अपनी व्यक्तिगत जीवन में अपने सम्पर्क में आये हुए अन्य व्यक्तियों के जीवन के विशिष्ट पहलु को कथात्मक शैली में रेखांकित करता है। हर व्यक्ति अपने जीवन में अनेक व्यक्तियों के सम्पर्क में आता है। सामान्य व्यक्ति उन क्षणों को विस्मृत कर देता है, किन्तु संवेदनशील एवं भावुक व्यक्ति इन स्मृतियों को अपने मन: पटल पर अंकित कर लेता है। इन क्षणों की स्मृति जब कभी आकुल कर देती है तभी संस्मरण साहित्य की सृष्टि होती है।

कथेत्तर साहित्यिक विधाओं के अंतर्गत जीवनी लेखन का महत्त्वपूर्ण स्थान है। इसमें किसी व्यक्ति विशेष के बाह्य एवं आंतरिक जीवन का प्रकाशन होता है। इस विधा में राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक तथा साहित्यिक परिवेश से प्रभावित मनीषियों और कलाकारों का जीवन-वृत्त वर्णित होता है। हिंदी में जीवनी को जीवन चरित्र या जीवन चरित भी कहा जाता है।

हिंदी साहित्य में जीवनी लेखन नई विधा है। जीवनी पढ़कर हम व्यक्ति के व्यक्तित्त्व एवं कृतित्त्व के साथ-साथ उसके परिवेश और समाज तथा उसके जीवन से जुड़े प्रेरक प्रसंगों एवं उसके रहन-सहन आदि से भी परिचित होते हैं। आत्मकथा ऐसी जीवन-कथा है, जो उसी व्यक्ति द्वारा लिखी जाती है। आत्मकथा को कुछ विद्वान् 'आत्मचरित' या 'आत्मचरित्र' भी कहते हैं। आत्मकथा, जीवनी एवं संस्मरण लगभग मिलती-जुलती विधाएँ हैं लेकिन इनमें सूक्ष्म भेद होने से पृथक विधाएँ हैं। 'जब कोई व्यक्ति अपनी कथा कहता है तो वह 'आत्मकथा' कहलाती है लेकिन जब कोई अन्य व्यक्ति किसी अन्य के विषय में लिखता है तो वह 'जीवनी' होती है। आत्मकथा लेखन कठीन कार्य है इसमें साहस एवं सत्यनिष्ठा की आवश्यकता होती है।

फ्रेंच से आये इस रिपोर्ताज को हिंदी साहित्य में नवाचार के रूप में देखा जा सकता है। आधुनिक हिंदी साहित्य में 'रिपोर्ताज' को स्वतंत्र विधा के रूप में स्वीकारा गया है। 'रिपोर्ताज' सामायिक आवश्यकता का परिणाम है। इसका आविर्भाव प्रथम विश्व-युद्ध के समय हो चूका था। द्वितीय महायुद्ध के दौरान इसका व्यापक प्रचार-प्रसार हुआ।

'डायरी' आधुनिक हिंदी साहित्य की नवीन विधा हैं। डायरी यों तो किसी व्यक्ति की नितांत वैयक्तिक सम्पत्ति होती है किन्तु प्रकाश में आने के बाद अपनी सार्वजनिक एवं सार्वकालिक भावनाओं के कारण साहित्य जगत् की संपत्ति बन जाती है।

गद्य की नव्यतम विधाओं में 'इंटरव्यू' भी पश्चिम की देन है। यह अभिनव गद्य-विधा मूलत: पत्रकारिता से सम्बन्धित है। इसमें कला, साहित्य, राजनीति, दर्शन, अध्यात्म, विज्ञान आदि किसी भी क्षेत्र की महान और मान्य विभूतियों से मिलकर किन्हीं प्रश्नों के संदर्भ में उनके विचार या दृष्टिकोन जानने और उन्हें उसी की शैली, भाषा और भंगिमा में व्यक्त करने की चेष्टा कि जाती है।

2.8 स्वाध्याय

अ) लघु उत्तरीय प्रश्न

1. पॉपुलर साहित्य का परिचय दीजिए।
2. समकालीन पॉपुलर साहित्य की जानकारी लिखिए।
3. लप्रेक कवियों का परिचय और वैशिष्ट्य लिखिए।
4. यूनी कविता का आशय स्पष्ट कीजिए।
5. संस्मरण
6. जीवनी
7. आत्मकथा
8. रिपोर्ताज
9. डायरी
10. साक्षात्कार

आ) दीर्घोत्तरी प्रश्न।

1. पॉपुलर साहित्य का अर्थ एवं स्वरुप को स्पष्ट करते हुए हिंदी लोकप्रिय साहित्य की जानकारी दीजिए।
2. पॉपुलर साहित्य का स्वरुप को स्पष्ट करते हुए समकालीन पॉपुलर साहित्य का विवेचन कीजिए।
3. लघु प्रेम कथाओं की विशेषताओं की विस्तारपूर्वक चर्चा कीजिए।
4. यूनी कवियों की कविताओं के वैशिष्ट्य को उद्घाटित कीजिए।
5. आत्मकथा-लेखन व जीवनी-लेखन किस प्रकार अलग-अलग विधाएँ है? सोदाहरण स्पष्ट कीजिए।

6. नवाचार साहित्य के रूप में रिपोर्ताज और डायरी विधाओं का विवेचन कीजिए।

2.9 क्षेत्रीय कार्य

1. लप्रेक और फलक लेखकों की जानकारी प्राप्त कीजिए।
2. इंटरनेट पर उपलब्ध पॉपुलर साहित्य की जानकारी प्राप्त कीजिए।
3. लप्रेक, यूनी कविता लिखकर अपनी सृजनात्मकता की अभिव्यक्ति कीजिए।
4. अकाल या बाढ़ के संदर्भ में रिपोर्ताज तैयार कीजिए।

2.10 अतिरिक्त अध्ययन के लिए

1. हिंदी साहित्य का इतिहास- रामचंद्र शुक्ल, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद।
2. साहित्य के समाजशास्त्र की भूमिका- मैनेजर पाण्डेय, हरियाणा ग्रन्थ अकादेमी, पंचकुला।
3. इश्क में शहर होना- रवीश कुमार, सार्थक, राजकमल प्रकाशन समूह, दिल्ली।
4. संभावना डॉट कॉम- शैलेश भारतवासी, हिन्दयुग्म प्रकाशन, दिल्ली।
5. हिंदी गद्य की नवीन विधाएं- प्रो.राजेन्द्र प्रसाद श्रीवास्तव।
6. हिंदी साहित्य का इतिहास- डॉ. विजयपाल सिंह।
7. हिंदी वाङ्मय बीसवीं शती सम्पादक- डॉ. नगेन्द्र।
8. हिंदी साहित्य- लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय।

❑❑❑